Photo by D. S. Kasbekar

पुरस्कृत
परिचयोक्ति

'सुन सुन मुन्ना मेरी बात!'

प्रेषक :
श्री ओम् प्रकाश, धनबाद

अगस्त १९५७

विषय - सूची

सम्पादकीय	.... १	मित्र-भेद (पद्य कथा)	.... ५१
मुख-चित्र	... २	आदर्श दाम्पत्य	... ५४
जैसे को तैसा (जातक कथा)...	३	रूपधर की यात्राएँ-१	.... ५९
शिकारी का शिकार	.... ७	अन्धा न्याय	... ५७
तीन मान्त्रिक (धारावाहिक)...	९	चन्दा तुम...(कविता)	... ६१
लोमड़ी और कछुआ	... १७	फ़ोटो परिचयोक्ति	.... ६७
ज्ञानी दुश्मन	... १८	साँप	... ६८
प्रतीकार	.... २६	समाचार वगैरह	.... ७०
नाविक सिन्दबाद (धारावाहिक)	३३	चित्र-कथा	.... ७२

★

एक प्रति ५० नये पैसे — वार्षिक चन्दा रु. ६—००

९ अगस्त '५७ से
AVM
PRODUCTIONS
ए.वी.एम चित्र
हम पंछी एक डाल के
मनोरंजन, संगीत और शिक्षासे परिपूर्ण
संगीत :
एन.दत्ता
निर्माता :
सदाशिव जे. राव कवि
संवाद-गीत-दिग्दर्शन :
संतोषी

यदि आपका बच्चा
इस हालतमें हों
MANNERS
मॅनर्स
ग्राइप मिक्श्चर दीजिए
और देखिए मुस्कराहट
उसके चेहरे पर फिर
खिल उठती है।
GEOFFREY MANNERS & CO. PRIVATE LTD., BOMBAY - CALCUTTA - DELHI - MADRAS.
ASP/GM 3

मुन्नू, एक दिन मैं जंगल में दूर, बहुत दूर, निकल गया...

...वहाँ मैं ने एक लोमड़ देखा... मैं ने हाथ उठाया था कि वह दुम दबा कर सरपट भागा।

बाद में आ गया एक
बड़ा डरावना बब्बर शेर!
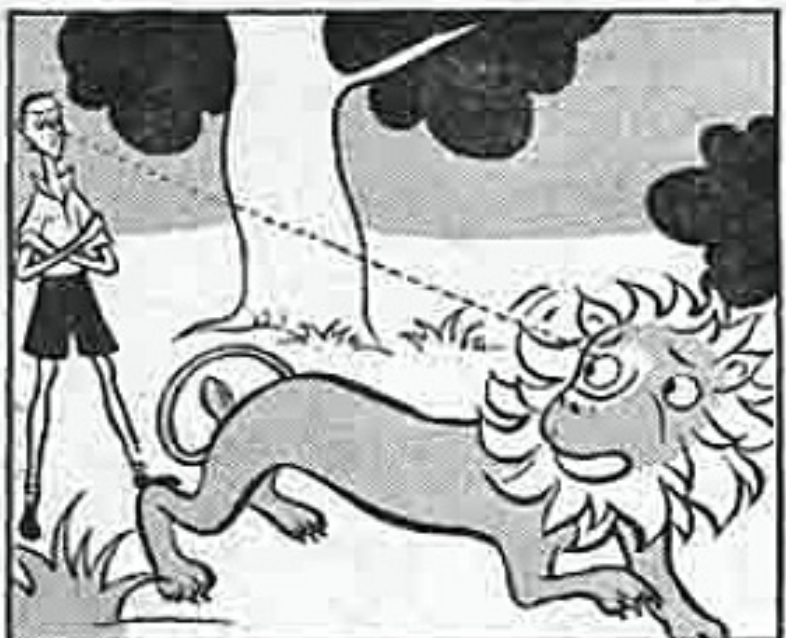
...पर मैं डरा नहीं! मैं ने जो उस की आँखों में आँखें डालीं तो शेर ऐसा ग़ायब हुआ जैसे गधे के सिर से सींग!

HVM. 298A-19 HI
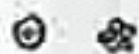
देखो, भाई चुन्नू, जो तुम चाहते हो कि मेरी तरह बहादुर बनो तो ताक़त के लिये डालडा से पका खाना खाया करो और दूध भी हर रोज़ पिया करो... समझे?

सूचना

★

एजेण्टों और ग्राहकों से निवेदन है कि मनीआर्डर कूपनों पर पैसे भेजने का उद्देश्य तथा आवश्यक अंकों की संख्या और भाषा संबंधी आदेश अवश्य दें। पता–डाकख़ाना, ज़िला, आदि साफ़ साफ़ लिखें। ऐसा करने से आप की प्रतियाँ मार्ग में खोने से बचेंगी।

सर्क्युलेशन मैनेजर
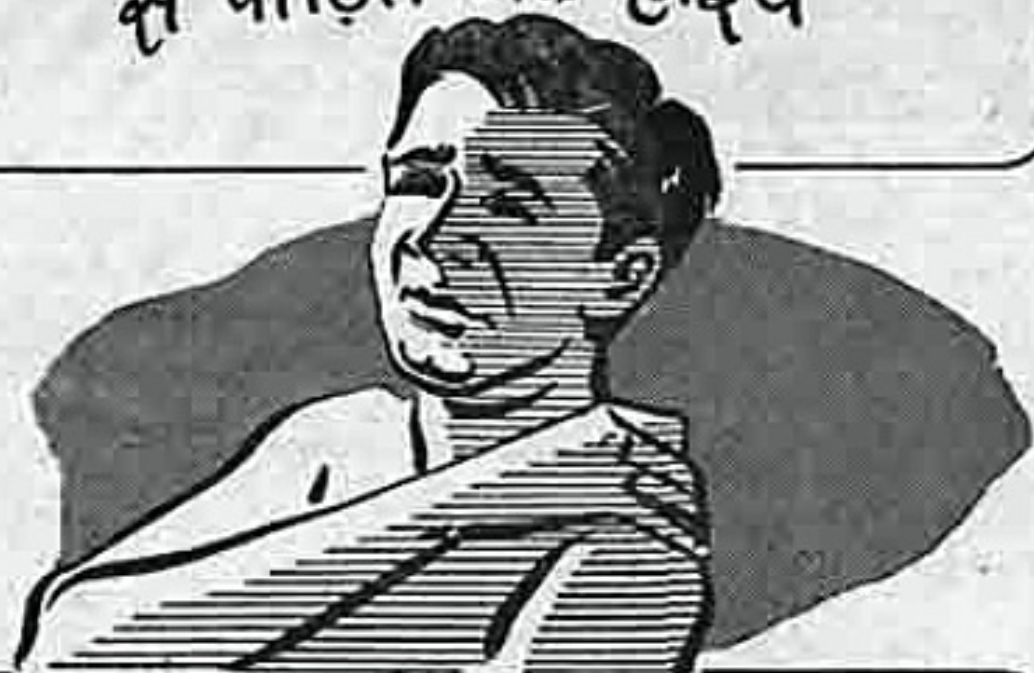
शारीरिक दर्द
से पीड़ित मत होईये
तत्काल राहत के लिए
लिटल्स
ओरिएंटल बाम
मलिये
LITTLE'S ORIENTAL BALM & PH. LTD. MADRAS, BOMBAY, DELHI & CALCUTTA.

भले ही आकाश में घटाएँ छायी हों, फिर भी बिजली की रोशनी की को
ज़रूरत नहीं। बस अपने कैमरे में अत्यधिक तेज़ कोडक 'ट्राय-एक्स' फ़िल्
भर लीजिए— इसके बाद आप घर के भीतर या बाहर एक साधारण बॉक
कैमरे से भी सुन्दर चित्र खींच सकते हैं।

अत्यधिक तेज़ कोडक 'ट्राय-एक्स' फ़िल्म की यह विशेषता है कि आप फ्लै
के बिना भी घर के भीतर ही सुन्दर चित्र खींच सकते हैं। दिन में घर के भीतर चि
खींचते समय अपने विषय को बरामदे, दरवाजे या खिड़की के सामनेवाले सबसे अधि
प्रकाशमान भाग में रखिए। कैमरे से विषय के प्रकाशित भाग को लक्ष्य कीजिए औ
हमेशा की तरह चित्र खींचिए।
कोडक 'ट्राय-एक्स' फ़िल्म के ज़रिए कम रोशनी में भी बहुत ही उम्दा चित्र खिंचते
—ऐसे चित्र जिन्हें खींचना आप पहले 'असंभव' समझते थे। आज ही अपने कैमरे
कोडक 'ट्राय-एक्स' फ़िल्म भरिए!

नयी कोडक 'वेरीक्रोम' पैन फ़िल्म पर कैसी भी रोशनी में हर तरह के विषयों के चित्र उत्तम खिंचते हैं। फाइन ग्रेन, तेज़ रफ़्तार (दिन की रोशनी ८०)। इस उत्तम कोटि की नयी पैंक्रोमैटिक फ़िल्म का एक रोल आज ही खरीदिए!

अत्यधिक तेज़—दिन की रोशनी २००, बिजली की रोशनी १६०
कोडक 'ट्राय-एक्स' फ़िल्म पर कम रोशनी में भी
सुन्दर चित्र खिंचते हैं। साधारण ग्रेन। प्रकाश के हल्के
और गहरे प्रभावों के साथ चित्र
कमाल के स्पष्ट आते हैं।

K 4474

विश्वसनीय 'कोडक' कैमरे से

Remy
SNOW
पाड़ी लक्ष्मी
वह सुन्दर है
वह उपयोग करती है
रेमि स्नो और पाउडर

हम यह नहीं कहते,
हम उत्तमोत्तम हैं
पर
निम्न वस्तुओं में हम
उत्तमोत्तम
कार्य कर दिखायेंगे :
पोस्टर्स
कैलेंडर्स
कार्टून्स
लेबिल्स
बुकलेट्स
फोल्डर्स
आफ़सेट प्रिंटिंग के सभी काम
उत्तम छपाई का चिह्न

हमारी तीर्थयात्रा

मेरा नाम राजन है। मेरे पिता कैलाशनाथ मेहरा खानदानी रईस थे। मैं बड़े नाज़ों के साथ पाला-पोसा गया था। माँ का प्यार, सवारी को कार और बात बात पर "जी सरकार" की भरमार थी। मैं तो मेरे स्कूल के साथी नन्दू, महमूद, चटपट, त्रिलोचन, जॉन इनके साथ खेलना कूदना और बालमंडल की कारवाही में हिस्सा लेना चाहता था। लेकिन पिताजी की सख़्त मनाई थी। उनका ख़याल था, मैं उन मामूली लड़कों की सोहबत में बिगड़ जाऊँगा! मेरे सारे दोस्त नेक, सच्चे और ईमानदार थे। सारी खेल कूद के बाद ये लोग अपनी पढ़ाई का भी ध्यान रखते थे। हम बच्चों की एक छोटी सी संस्था थी "बालमंडल"। बालमंडल के सदस्यों ने तय किया के छुट्टियों में जगह जगह घूमकर उन स्थानों को देखा जाय, जहाँ देश नया सिंगार कर रहा है। प्रोग्राम का पर्चा जब मुझे नन्दू ने दिया तो मैं खुशी खुशी घर लौटा और माँ से कहा, मैं इस सफ़र पर जाऊँगा। पिताजी ने इन्कार कर दिया। माँ ने मुझे आज्ञा दे दी, लेकिन इस शर्त पर कि मैं हमारे नौकर दामू को साथ ले जाऊँ। खैर हम लोग सफ़र पर चल पड़े। हम बच्चों में सब से छोटा था चटपट। उसने न जाने ड्राइवर के कान में क्या मंतर फूँक दिया, ड्राइवरने ऐलान किया "गाड़ी नहीं चलेगी धक्के लगाव"। सब लड़के उतर पड़े साथ दामू भी। दामू आँखें बंद करके गाड़ी धकेलता रहा और बच्चे एक एक कर के बस में चढ़ गये। बस चल पड़ी और जनाब दामू साहब हाथ मलते रह गये। हम लोग हँसते गाते अपने पहले मुक़ाम पर पहुँच गये। हमारे ठहरने का इन्तज़ाम एक

डाक बंगले में किया गया था। उस बंगले का रखवाला रहमान चाचा हम सब बच्चों को देख कर खुश हो गया। डाक बंगले में दामू साहब फिर आ धमके। मुझे लगा, उसे पिताजी ने ही भेजा होगा—मुझे वापस ले, जाने। लेकिन रहमान चाचा ने दामू को समझाया होगा। क्योंकि जब हम लोग सुबह उठे तो दामू वहाँ नहीं था।

हमारी सफ़र फिर शुरू हो गयी। इस बार हमारा मुक़ाम हरिपुर में था। वहाँ के स्कूल की हालत बहुत ख़राब थी। हमने सोचा, क्यों न एक नाटक खेलकर कुछ पैसा इकट्ठा किया जाय। हमारा नाटक बहुत पसंद किया गया और जो भी कुछ आमदनी हुई थी, उससे हरिपुर की पाठशाला की मरम्मत हुई।

हरिपुर से चलकर हम लोग एक दूसरे गाँव पहुँचे। लेकिन वहाँ एक नई मुसीबत आकर खड़ी हो गई। गाँव के पटेल का आदमी आया और उसने पूछा—राजन कहाँ है? मैं आगे बढ़ा, लेकिन नन्दू ने आकर कहा—"मैं हूँ राजन मुझे ले चलो"। पटेल का आदमी नन्दू को ले गया। फिर हम सब बच्चों ने सोचा के सब लड़के राजन बनकर जाएं तो ठीक होगा। पटेल ने हम सबको बन्द कर दिया। अब बन्द कमरे में से बाहर निकलने के रास्ते सोचने लगे। सब ने सोचा—"अगर छप्पर के रास्ते निकल जाएँ तो"—बात ठीक थी और फ़ौरन अमल में लाई गई। हम लोग आज़ाद हो गये।

अब हम लोग सीतापुर पहुँच गये। वहाँ का बाँध देखने लायक़ था। सीतापुर में हम ने एक प्रदर्शनी की। गाँववालों ने हमें सर आँखों पर उठा लिया। हमारी तीर्थयात्रा पूरी हो गई। हम घर लौट आये। पिताजी पटेल के यहाँ से आये और उन्होंने ऐलान किया के मेरा उस स्कूल में जाना बन्द हो जायेगा। मेरे लिए घर पर ही मास्टरों का इन्तज़ाम किया जाय, ऐसा हुक़्म मिला।

मास्टरों के चुनाव का काम मिर्ज़ाजी को सौंपा गया था। मैं मिर्ज़ाजी के साथ बैठ गया। मास्टर आये, चुड़ीदार पैजामा, शेरवानी और आँखों पर ऐनक लगाये। उन्होंने अपना नाम मिर्ज़ा उस्मान बताया। मास्टर ने मुझे इशारा किया—ये तो महमूद है जो अपना हुलिया बदलकर आया था। उसके साथ दो मास्टर और भी थे। वो भी मेरे दोस्त थे जॉन और त्रिलोचन। मैं उन्हें अपने कमरे में ले गया। दोस्तों ने बताया कि इस साल वो लोग "हम बच्चे हैं जहान के" नाटक खेल रहे हैं और नाटक का सारा काम मुझे ही करना पड़ेगा। मैं तो क़ैद में फँसा था। हमारी बातें हो रहीं थीं, माँ ने मुझे पुकारा। मैं ख़ुशी ख़ुशी बाहर गया। माँ ने पहिचान लिया के मैं बहुत ख़ुश हूँ। उसने कारण पूछा। भला माँ से मैं क्या छुपाता। मैंने सच हक़ीक़त बता दी। लेकिन मुझे पिताजी के वहाँ आकर खड़े होने की ख़बर नहीं थी। देखा तो खड़े हैं—बिना बोले मेरे कमरे की तरफ़ चले गये। और एक मिनट के बाद मैंने देखा कि महमूद, त्रिलोचन और जॉन अपनी जान लेकर भाग रहे थे। इस गड़बड़ में मेरे दोस्त नाटक की किताब भी भूल गये। दूसरे दिन मैं अपने कमरे में था तो देखता क्या हूँ कि खिड़की से चटपट अंदर दाख़िल हो रहा था। वह आया था नाटक की किताब लेने। हम बातें कर रहे थे कि बाहर नए मास्टर और पिताजी की बातचीत सुनाई पड़ी। बातचीत से पता लगा कि मेरे नये मास्टर किसी सरकस में रिंग-मास्टर थे। मास्टर मेरे कमरे की तरफ़ बढ़ने लगे। मैं नाटक की किताब लेकर खिड़की के बाहर कूद पड़ा। लेकिन चटपट फँस गया। बस फिर क्या था चटपट ने राजन का पार्ट अदा किया और इशारे से मुझे भी जाने को कह दिया।

नन्दू को मेरा इस तरह आना अच्छा नहीं लगा। लेकिन मैंने नन्दू से कहा के मैं अपनी पढ़ाई बराबर ज़ारी रखूँगा। जिस दिन नाटक की तैयारी हो रही थी उसी वक्त नन्दू एक सीढ़ी पर चढ़कर झंडा लगा रहा

था। मैं सीढ़ी पकड़कर खड़ा था, लेकिन इतने में जॉन भागता हुआ आया और उसने पिताजी के आने की ख़बर दी। मैं घबरा गया और उस घबराहट में मेरे हाथ से सीढ़ी छूट गई और नन्दू गिर पड़ा। मैंने नन्दू से कहा "हम ड्रामा नहीं करेंगे"। नन्दू ने कहा "फ़ौज के एक सिपाही के घायल हो जाने से फ़ौज आगे बढ़ने से नहीं रुकती" और मुझे ही नन्दू ने काम करने के लिए कहा। "हम बच्चे हैं जहान के" ड्रामा उस दिन बहुत ही अच्छा हुआ। नन्दू ड्रामा ख़त्म होने पर गिर पड़ा। हम सब बच्चे उसे घर पर ले गये। नन्दू के गिरने के लिए ज़िम्मेदार मैं था। मैं रात भर उस के सिरहाने बैठा रहा! वह नींद में बड़बड़ा रहा था। उसे एक ही फ़िक्र थी कि कल अख़बार कौन बेचेगा। मैंने सोचा, यह काम मुझे ही करना चाहिये। मैं निकल पड़ा। कार्यालय से सवेरे अख़बार लिये और बेचकर पैसे नन्दू की माँ के हाथ में रखे। लेकिन नन्दू की माँ ने कहा "तुम घर नहीं गये, तुमने माँ-बाप का दिल दुखाया है, तुम्हें माँ-बाप की माफ़ी माँगनी चाहिए"। मैं लौट रहा था—देखा तो माँ, पिताजी, मिर्ज़ा और दामू दरवाज़े में खड़े थे। पिताजी ने मुझे गले लगाया। नन्दू को आशिर्वाद दिया। और चौक की नुकड़वाली बड़ी आलीशान कोठी हमारे बालमंडल के लिये दे दी। अब पिताजी को न मेरे लिए, न मेरे दोस्तों के लिए कोई शिकायत थी। हमारी तीर्थयात्रा की इस कहानी को—मेरे दोस्तो! और भी दिलचस्पी से देखना हो तो ए. वी. एम चित्र "हम पंछी एक डाल के" ज़रूर देखें।

राजेन्द्रनाथ कैलाशनाथ मेहरा

चन्दामामा
संचालक : चक्रपाणी
हम इस मास से—"रूपधर की यात्राएँ" धारावाहिक रूप से शुरू कर रहे हैं। यह भी ग्रीक पौराणिक कहानी के आधार पर लिखी गई है।
रूपधर "भुवन-सुन्दरी" का एक मुख्य पात्र था। "भुवन-सुन्दरी" का प्रकाशन गत मास समाप्त हो गया था।
इस समय "चन्दामामा" में "तीन मान्त्रिक" कहानी धारावाहिक रूप से प्रकाशित हो रही है। इसके अलावा तीन कहानियाँ शृंखलाबद्ध रूप में चल रही हैं। वे हैं: "जातक कथाएँ" "बेताल कहानियाँ" और "नाविक सिन्दबाद"
भविष्य में हमारा यह प्रयत्न रहेगा कि और देशों के पुराण साहित्य का भी "चन्दामामा" में समुचित प्रतिनिधित्व हो।
वर्ष : ८
अगस्त १९५७
अंक : १२

मुख - चित्र

कीचक को दिये हुए वचन के अनुसार रानी सुधेष्णा ने द्रौपदी को बुलाकर कहा—"सैरन्ध्री, मुझे बहुत प्यास लग रही है! तुम हमारे भाई के घर जाकर थोड़ा मद्य लाओ।"

"आपका भाई मुझ पर मोहित है। मैं उनके घर नहीं जाऊँगी! किसी और को भेजिए न!" द्रौपदी ने कहा।

"अगर मैं भेजूँगी तो मेरा भाई कुछ नहीं करेगा। जा तुरत चला जा।" सुधेष्णा ने द्रौपदी से कहा। आख़िर, द्रौपदी एक सोने का पात्र लेकर कीचक के घर गई। द्रौपदी को देखते ही, कीचक ने सोचा कि उसकी इच्छा पूरी हो रही थी, उसने उसका हाथ पकड़ लिया। द्रौपदी उसका हाथ छुड़ाकर बाहर चली गई। कीचक उसके पीछे भागा।

द्रौपदी सीधे विराट महाराजा के पास गई। परन्तु कीचक ने राजा और दरबारियों की भी परवाह न की, और द्रौपदी को, केश पकड़कर धका दे दिया। यह देखकर दरबार में, कोई न उठा, किसी ने कुछ न कहा।

केवल भीम यह न सह सका। वह तिलमिलाया, पासवाले एक वृक्ष को तोड़ने गया। युधिष्टिर ने यह देखकर कहा—"अरे पागल! वह हरा वृक्ष तेरे ईन्धन के काम न आयेगा। क्यों उसे उखाड़ता है?" उसने भीम को रोका।

कीचक को इस प्रकार अपमान करता देख, और सब को, अपने पतियों को भी चुप देख, द्रौपदी ने राजा विराट से कहा—"मेरे पति बहुत शक्तिशाली होने पर भी जब कुछ नहीं कर पाये हैं तो आप राजा होकर क्यों यों चुप बैठे हैं?"

विराट कीचक को डाँट-डपट न सकता था। "तुम्हारा उससे क्या छुपा छुपा सम्बन्ध है, हम क्या जानें?" उसने कहा।

युधिष्टिर ने देखा कि परिस्थिति बिकड़ रही थी। उसने द्रौपदी पर गुस्सा करते हुए कहा—"अगर तेरा अपमान हुआ है, तो क्या तेरे पति मौका पाकर उसका बदला न लेंगे?" द्रौपदी रोती हुई अन्तःपुर चली गई।

जैसे को तैसा

उन दिनों ब्रह्मदत्त काशी का राजा था। उनके यहाँ, पिंगल नाम का एक पुरोहित था। उसका रंग पीला, सिर गंजा और मुँह पोपला था।

बोधिसत्व, पिंगल का शिष्य बनकर उनके पास पढ़ा-लिखा करते थे। तब उनका नाम था तकारिया।

राज पुरोहित पिंगल का एक साला था। उसकी शक्ल-सूरत भी पिंगल से मिलती-जुलती थी। वही रंग, वही गंजा सिर वही पोपला मुख। उन दोनों की आपस में न बनती थी। पिंगल ने अपने साले का बहुत तरह से नुक़सान करना चाहा, पर वह सफल न हुआ।

आखिर पिंगल ने अपने साले को मारने के लिए एक चाल सोची। उसने राजा के पास जाकर कहा—"महाराजा! काशी नगर भारत देश में सबसे उत्तम नगर है। आप राजाओं में उत्तम राजा हैं। इसलिए हमारे क़िले के निर्माण में किसी प्रकार की कमी नहीं होनी चाहिये। क़िले के दक्षिण द्वार के बनाने में ग़ल्ती हुई है। यह हमारे लिये हानिकर है। हमारा इसके कारण अपयश भी होगा। उस ग़ल्ती को तुरत ठीक कर लेना चाहिये, यह मेरा निवेदन है।"

"उसके लिए हमें क्या करना होगा?" राजा ने पिंगल से पूछा।

"उस द्वार को पहिले तोड़ना होगा। फिर शुभप्रद लकड़ी लाकर दूसरा दरवाज़ा बनवाना होगा। तदनन्तर नगर की देवी-देवताओं को बलि देकर, शुभ-मुहूर्त पर नये दरवाज़े को स्थापित करना होगा।" पिंगल ने राजा को सलाह दी।

"पीले रंग के, गंजे सिर, पोपले मुख वाले एक ब्राह्मण की बलि देनी होगी। महाराज! इस द्वार की रक्षा करनेवाली, जो महाशक्तियाँ हैं, वे ब्राह्मण की बलि ही चाहती हैं। दूसरे की नहीं। उस ब्राह्मण को वहीं गढ़े में दाब देना होगा और उस पर द्वार को लगाना होगा।" पिंगल ने कहा।

"अच्छा, तो ऐसे ब्राह्मण की खोज करवाइये, और द्वार लगवाइये।" राजा ने कहा।

पिंगल को यह जानकर बड़ी खुशी हुई कि उसकी चाल सफल हो गयी थी और अब अपने साले को मारने का अच्छा मौका मिल गया था।

खुशी खुशी उसने घर आकर अपनी पत्नी से यह कहा—"देख, कल तेरे भाई की उम्र खतम हो जायेगी। उसे नये दरवाज़े के लिए बलि दे रहा हूँ।"

"हमारे भाई की ही क्यों बलि दी जा रही है! राजा ने यह क्यों मान लिया है?" पिंगल की पत्नी ने पूछा।

"मैंने राजा को यह थोड़े ही बताया था कि फ़लाने की बलि दी जाय! मैंने

राजा यह प्रस्ताव मान गया। राजाज्ञा पर पिंगल ने दक्षिण का द्वार तुड़वा दिया। उसके स्थान पर नया दरवाज़ा शीघ्र बनवा भी लिया गया।

पिंगल ने राजा के पास जाकर कहा—"महाराज! नया दरवाज़ा बनकर तैयार हो गया है। उसको लगाने के लिए कल अच्छा समय है। बलि देकर द्वार स्थापित करने के लिए कृपया आप अपनी अनुमति दीजिये।"

"बलि के लिए क्या प्रबन्ध किया जाना चाहिये?" राजा ने पुरोहित से पूछा।

तो सिर्फ़ इतना ही कहा था कि पीले रंग वाले, गंजे सिर, और पोपले मुखवाले ब्राह्मण की बलि के लिए ज़रूरत है। राजा मान गये। कल मैं तुम्हारे भाई को ले जाऊँगा और कहूँगा कि इसकी बलि दी जा सकती है। कौन न कर सकेगा?" पिंगल ने कहा।

पिंगल की पत्नी ने अपने पति से कुछ न कहा। परन्तु उसने अपने भाई के पास पति की चाल के बारे में खबर भिजवा दी और उसे सलाह दी कि सवेरे होने से पहिले वह शहर छोड़कर चला जाये।

जब पिंगल की चाल के बारे में, उसके साले को पता लगा तो वह दो-तीन व्यक्तियों को, जिनका रंग पीला था और सिर गंजे थे, पोपले मुख थे, अपने साथ लेकर उसी दिन रात को शहर छोड़कर चला गया।

अगले दिन सवेरे पिंगल ने राजा से कहा—"महाराजा! बलि के लिए उपयुक्त व्यक्ति फ़लानी जगह पर रह रहा है। कृपया बुलवाइये।" तुरत राजा ने अपने सैनिकों को भेजा। सैनिकों ने उस जगह पर पूछताछ की। उन्हें मालम हुआ कि वे पिछले दिन ही देश छोड़कर चले गये थे। यह जाकर उन्होंने राजा से कहा।

सैनिकों की बात सुनकर राजा ने कहा—"अब क्या किया जाये? इन चिन्होंवाले ब्राह्मण को कहीं न कहीं से ढूँढ़कर लाना ही होगा।"

तब मन्त्रियों ने कुछ सोचकर कहा—"यह कोई बड़ी समस्या नहीं है महाराज! हमारे पुरोहित ही में ये सब लक्षण हैं न! उनकी ही बलि देना उचित है?"

"दी तो जा सकती है, पर मैं पुरोहित के बग़ैर कैसे रहूँ? उनकी जगह हमें कोई योग्य पुरोहित मिलेगा?" राजा ने मन्त्रियों से कहा।

"हमारे पुरोहित के पास तकारिया नाम का, उनका शिष्य है। सुना जाता है कि वह गुरु से भी अधिक अक़्लमन्द और समझदार है। आप उसे पुरोहित नियुक्त कर सकते हैं।" मन्त्रियों ने राजा से कहा।

तुरत राजा ने तकारिया को बुलवाकर कहा—"आज से मैं तुम्हें अपना पुरोहित नियुक्त करता हूँ। तुम शास्त्रोक्त रूप से पिंगल की बलि दो और उसको गाड़ दो, और उसके ऊपर द्वार लगवाओ।"

तकारिया दक्षिण द्वार के पास गया। पिंगल को बलि देने के लिए, उसके हाथ-पैर बाँधकर, यज्ञ पशु की तरह लाया गया। जहाँ बलि दी जानी थी, वहाँ दरवाज़े के पास एक गढ़ा खोदा गया था। उस गढ़े में गुरु और शिष्य, दोनों उतरे।

पिंगल ने रोते हुए कहा—"अरे शिष्य! जो गढ़ा मैंने किसी और के लिए खुदवाया था, उसमें मुझे ही घुसना पड़ रहा है।"

"गुरु जी! अनधिकारचेष्टा करनेवाले पर अवश्य आपत्ति आती है। आप फ़िक्र न कीजिये! मैं राजा के पास जाकर कहूँगा कि निश्चित मुहूर्त आधी रात तक नहीं है। उसके बाद, इधर उधर का बहाना कर आपके प्राण बचाऊँगा।" तकारिया ने कहा।

उसने अपने कथन के अनुसार, बलि का मुहूर्त आधी रात को निश्चय किया। रात को उसने पिंगल को भाग जाने के लिए कहा। उसने एक मरी हुई बकरी को लाकर, गढ़े में डाल दिया और सवेरा होते होते वहाँ दरवाज़ा लगवा दिया।
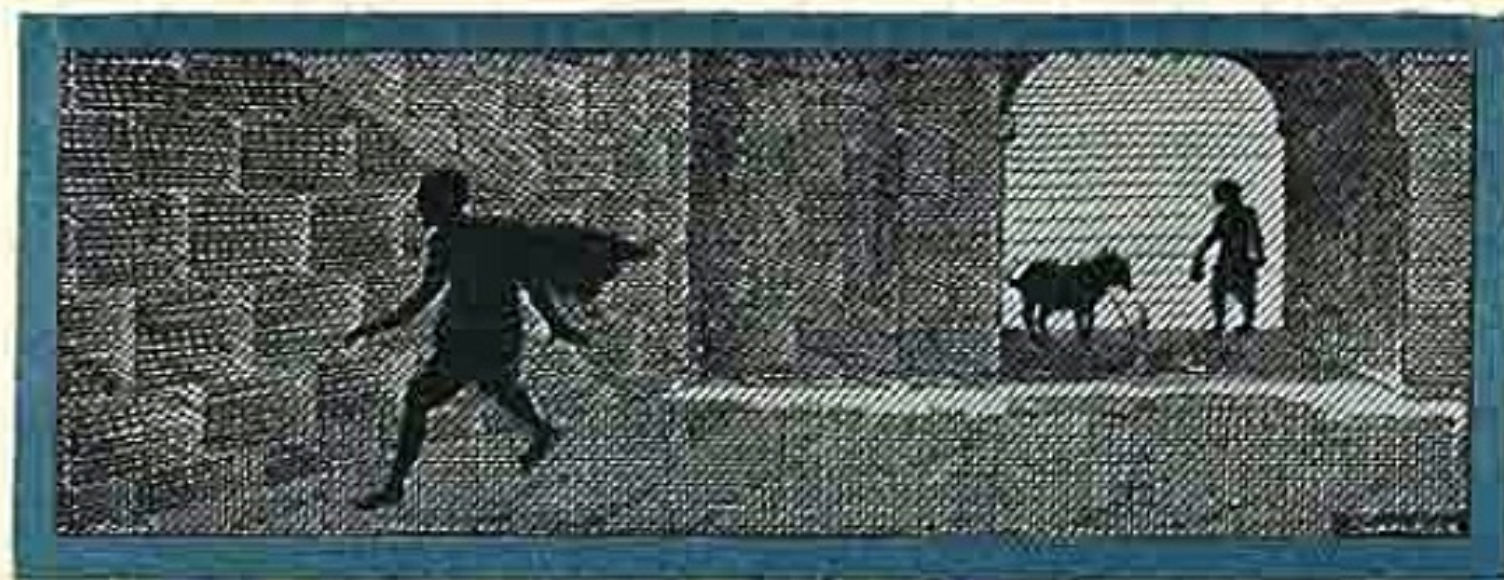
शिकारीका शिकार

यह जानते ही कि खरगोश ने भेड़िये को जला दिया था, लोमड़ी खरगोश का नाम लेते ही कांपने लगती। उसने कान पकड़े कि वह कभी खरगोश को तंग न करेगी।

इसलिए यदि खरगोश कहीं दिखाई देता तो लोमड़ी मुस्कराकर पूछती—"ठीक तो हो!" वह उसका हाल-चाल पूछकर अपने रास्ते पर चली जाती।

जल्दी ही खरगोश और लोमड़ी, पहिले की तरह पुराने दोस्त बन गये। वे एक दूसरे के घर जाने लगे, और इधर उधर की गप्प भी लगाने लगे।

एक दिन लोमड़ी खरगोश के घर गई। इधर उधर की बातें हुईं। "मैं कल सवेरे जंगल जाऊँगी और शाम तक शिकार खेलने का इरादा है। क्या तुम भी मेरे साथ चलोगे?" लोमड़ी ने खरगोश से पूछा।

"अरे! मुझे कितने ही काम हैं। मुझे फ़ुरसत कहाँ है! तुम ही जाओ। अगर कोई चीज़ मेरे लायक हो, तो मुझे देते जाना।" खरगोश ने कहा।

अगले दिन लोमड़ी, एक बोरी कन्धे पर डालकर शिकार के लिए निकली। शाम तक दौड़-धूप करने के बाद, उसके हाथ कुछ जंगली बत्तख़ और कुछ पक्षी लगे। उन सबको बोरी में डालकर, लोमड़ी गाती-गुनगुनाती, अन्धेरे में घर की ओर चली।

खरगोश दिन भर घर में ही रहा। शाम को वह उस रास्ते में जा बैठा, जिस रास्ते लोमड़ी को जाना था। लोमड़ी को गाता आता देख खरगोश रास्ते के किनारे इस तरह लेट गया, जैसे मर गया हो।

लोमड़ी उस तरफ़ से जा रही थी कि उसने मरे हुए खरगोश को देखकर

श्री सुमन कुमार जोशी

सोचा—"अरे! कितना मोटा खरगोश है! इस बोरी को घर में डालकर, वापिस आकर इसे ले जाऊँगा। खरगोश का मांस खाये बहुत दिन हो गये हैं।" यह ज़ोर से कहकर, लोमड़ी आगे बढ़ी।

बिना लोमड़ी को दीखे ही खरगोश एक और रास्ते से, उससे पहिले जाकर, उसके रास्ते में फिर वैसे ही लेट गया, जैसे मर गया हो।

लोमड़ी ने उसको देखकर फिर ज़ोर से सोचा—"यहाँ एक और खरगोश है। आज हो क्या गया इन्हें? जंगल में खरगोश मरते-से लगते हैं। इनको नहीं छोड़ना चाहिये। इस बोरी को यहाँ रखकर पहिले खरगोश को भी उठा ले जाता हूँ।" वह वापिस चली।

लोमड़ी के जाते ही, खरगोश, बोरी को कन्धे पर डालकर, अपने घर गया। उसने बोरी में बन्द पक्षियों को छोड़ दिया।

लोमड़ी ने बहुत खोजा, पर उसे पहिला खरगोश कहीं दिखाई नहीं दिया। इतने में अन्धेरा और भी बढ़ गया। जब उसने अपनी बोरी को ढूँढा, तो वह भी ग़ायब थी। दिन भर की मेहनत फ़ाल्तू गई थी। वह पैर घसीटती घसीटती घर पहुँची।

खरगोश ने लोमड़ी से मिलकर पूछा—"क्यों भाई! तुम शिकार से वापिस आयी हो। क्या क्या पकड़कर लायी हो? क्या मुझे भी कुछ दोगे?"

लोमड़ी ने मन मसोसकर कहा—"क्यों नहीं पकड़कर लायी! इतना सारा इंगित ज्ञान पकड़कर लायी हूँ।"

"बस इतना ही? इसके लिए ही क्या शिकार के लिए गयी थी? मुझसे पूछती तो मैं भी दे देता।" खरगोश ने कहा।

[७]

[पिंगल जब पहिला द्वार पार कर, दूसरे द्वार के पास गया। एक पहाड़ जैसे आदमी को यह बताकर कि वह कौन था, उसे भी वह पार कर गया। परन्तु छटे द्वार पर—एक राक्षस के हाथ, जिसने पद्मपाद की शक्ल बना रखी थी, उसकी बुरी हालत हुई। उसे कुछ नहीं सूझा कि क्या किया जाय। तभी वह मन्दिर से, आकाश में फेंक दिया गया—उसके बाद...]

पद्मपाद को देखते ही पिंगल की जान में जान आई। उसका हौसला बढ़ा। मृत्यु का भय जाता रहा। साहस आ गया। पद्मपाद ने पिंगल को नीचे न गिरने दिया। हाथ में उठाकर उसको नीचे ज़मीन पर धीमे से रख दिया। "पिंगल, क्या हुआ तुम्हें! कहीं बुरी तरह चोट तो नहीं लगी है!" पद्मपाद ने व्याकुल होकर पूछा।

"चोट की बात जाने दो, कम से कम जान तो बची। यही काफ़ी है।" पिंगल ने पद्मपाद से कहा और मुड़कर उजड़े मन्दिर को देखा। वह देख ही रहा था कि वह नदी जो बिल्कुल सूख गई थी, फिर पानी से भर गई।

पद्मपाद ने पिंगल के कन्धे पर हाथ रखकर कहा—"पिंगल! हम इस बार हार

गये हैं। महामायावी के शिष्य नदी को फिर जल से भर रहे हैं। मन्दिर भी पानी में डूब जायेगा। पर जब हम चाहें तब फिर नदी को सुखा सकते हैं। इसका भेद मैं जानता हूँ। तुम डरो नहीं। पहिले अपनी बात तो कहो।"

पिंगल ने पद्मपाद को बताया कि वह कैसे पहिले द्वार से छटे द्वार तक पहुँचा था और बीच में क्या क्या गुज़रा था। उसने एक बात भी न छोड़ी।

"उस छटे द्वार पर इतना अक्लमन्द भूत पहरा दे रहा होगा, इसकी मैंने कल्पना भी न की थी। मुझे यकायक वहाँ तुम्हारी शक्ल दिखाई दी। "ठहरो! तुम कौन हो?"—उसने ठीक तुम्हारी आवाज़ में पूछा। मुझे सन्देह हुआ, और इस बीच एक गदा चमकी। मैंने आँखें बन्द कर लीं। बस, फिर क्या था, देखते देखते मेरी पीठ पर, सिर पर, धड़ाधड़ मार पड़ने लगी। किसी के ताकतवर हाथों ने मुझे उठाकर आकाश में गेंद की तरह उछाल दिया। मुझे तुमने नीचे गिरने से बचाया।" पिंगल ने कहा।

"यह बात है!" पद्मपाद ने लाल आँखें करके, पानी में डूबते, उजड़े मन्दिर की ओर देखा। "पिंगल! इस बात की कल्पना तक न थी कि महामायावी के शिष्य, इस प्रकार का नीच-कार्य करेंगे! तुम्हें उन्होंने मेरा रूप धारण कर डराया; नहीं तो उससे पहिले उनकी सब दुष्ट-शक्तियों को तुमने अच्छी तरह जीत लिया था। यह मेरे लिये अवश्य आनन्द का कारण है।"

पद्मपाद की यह बात सुनकर पिंगल का ढाढ़स बढ़ा। उसने उजड़े मन्दिर को देख कर कहा—"अब हमें क्या करना

होगा! मन्दिर फिर पानी में डूबा जा रहा है।"

"आज हम कुछ नहीं कर सकते। कल से, तीन दिन बाद, फिर एक शुभ दिन आता है। उस दिन तुम फिर महा-मायावी की समाधि में घुस सकते हो। तब तक हमें यहीं रहना होगा और उस दिन की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। इस बीच समय काटने के लिए...." कहते कहते पद्मपाद ने गदा को हवा में घुमाकर कोई मन्त्र पढ़ा। तुरत उस निर्जन प्रदेश में एक ऊँचा-सा महल खड़ा हो गया।

पिंगल उस जादू के महल को देख रहा था कि उसका हाथ पकड़कर, पद्मपाद उसको महल की ओर ले गया। वे जब महल के प्रांगण में पहुँचे तो उनके लिए महल का द्वार खुल गया। दो बड़े हट्टे-कट्टे काले काले विशाल व्यक्तियों ने आकर उन दोनों का नमस्कार करके स्वागत किया। वे दोनों अन्दर चले गये।

"पद्मपाद! ये कौन हैं? "पिंगल ने पूछा।

"ये? हमारे मनोरंजन के लिए आये हुए जादू के राक्षस हैं। हम यहाँ खाली तो बैठ नहीं सकते हैं न?....हम इन राक्षसों को आपस में लड़ाकर, तलवार व कुश्ती के जौहर दिखाने के लिए कहेंगे। बड़ा मज़ा आएगा।"

पिंगल और पद्मपाद महल के एक बड़े कमरे में प्रवेश कर रहे थे कि उन्हें, कई पहलवान, योद्धा, कसरत करते हुए दिखाई दिये। उसने उनको देखते हुए पूछा—"पद्मपाद! कहीं ये हमारा कुछ बिगाड़ेंगे तो नहीं?"

"—हमें इस बारे में डरने की कोई जरूरत नहीं" पद्मपाद ने आगे बढ़कर

ओर से न बातें करो....शायद भूत बुरा मानें। हमें, हमारी सेवा करने के लिए आये हुए भूतों को, नीची नज़र से नहीं देखना चाहिये। याद रखना भाई! उनको....इन तीन दिनों के लिए गन्धर्व कन्याएँ ही समझ लो।" फिर पिंगल और पद्मपाद ने भोजन किया।

इतने में वे दोनों व्यक्ति वहाँ कुछ भूत पहलवानों, योद्धाओं को लाये। उन्होंने अपने शरीर पर तरह तरह के कपड़े पहिन रखे थे। उन्होंने मल्ल-युद्ध, तलवार के पैंतरे दिखाकर पिंगल और पद्मपाद का बहुत देर तक मनोरंजन किया।

पहिले जो व्यक्ति दिखाई दिये थे, उनमें से, एक से कुछ कहा। वे तुरन्त वहाँ से चले गये।

पद्मपाद और पिंगल, कमरे में, गद्दों पर, सनदों का सहारा लेकर बैठ गये। कुछ देर में, सोने के पात्रों में तरह तरह के भोजन लेकर कुछ सुन्दर स्त्रियाँ आईं। पिंगल ने पद्मपाद से पूछा—"पद्मपाद! ये गन्धर्व कन्याएँ हैं, या इस सुन्दर रूप में भूत हैं?"

पद्मपाद ने कहा—"भूत" पिंगल को बोलने से रोकते हुए कहा—"भाई, इतने

इस तरह तीन दिन बीत गये। चौथे दिन पद्मपाद ने, उस जादू के महल को, और उसमें रहनेवाले, जादू के प्राणियों को, अपने जादू के बल से गायब कर दिया। वह उस जगह पर गया, जहाँ उसने पहिले मन्त्र-पाठ किया था।

पद्मपाद ने, नदी में डूबे हुए मन्दिर की ओर अँगुली दिखाते हुए कहा—"पिंगल! अब मैं नदी के जल को सुखा देता हूँ। अब जब तुम फिर महामायावी की समाधि में जाओ, तो तुम्हें क्या क्या

करना चाहिये इस बारे में फिर कहने की, ज़रूरत नहीं है। सब बातें तुम्हें याद ही होंगी।"

"पद्मपाद! ऐसी कोई ज़रूरत नहीं है। पहिले खाई हुई मार की सूजन अभी तक नहीं गई है। भले ही मैं कुछ भूल जाऊँ, मैं वह मार, दर्द और तुम्हारे रूप में आये हुए महामायावी के शिष्य को कभी नहीं भूल सकता। उसे ज़रूर याद रखूँगा। इस बार मैं उसकी अच्छी ख़बर लूँगा" पिंगल ने कहा।

पद्मपाद ने मन्त्र पढ़कर, थोड़ी देर में ही नदी का पानी सुखा दिया। पिंगल ने निर्भय हो, मन्दिर के प्रथम द्वार के पास जाकर, फुँकारते हुए साँप के फन पर हाथ रखा। वह तुरत मरकर नीचे गिर गया। फिर द्वार के पीछे से कर्ण कर्कश स्वर में किसी ने कुछ प्रश्न किया।

"मैं पिंगल हूँ। मैं अवन्तीपुर का मछियारा हूँ।"—कहकर पिंगल ने दरवाज़ा खटखटाया। दरवाज़ा खुल गया। पहाड़-सा एक काला आदमी, तलवार घुमाता सामने आया। उसका पिंगल-का गरदन झुकाने के लिए कहना। उसका गरदन झुकाना—उस आदमी का नीचे गिर जाना सब पहिले की तरह गुज़र गया।

पिंगल, एक एक द्वार पार कर, जब छटे द्वार पर पहुँचा तो द्वार के समीप, पिंगल की माँ ने आँसू बहाते हुए दीन स्वर में कहा—"बेटा! क्यों यों कष्ट झेलते हो? ये सब मुझसे देखा नहीं जाता। वापिस चले जाओ। वह पद्मपाद तुम्हें मारने की सोच रहा है।"

पिंगल एक क्षण के लिए हैरान हो गया। फिर उसको, पहिला अनुभव याद आया। यह जानकर वह हैरान हुआ

कि वह भूत, जिसने पहिले पद्मपाद का रूप धारण कर धोखा दिया था, अब माँ का रूप धरकर उसको धोखा देने का प्रयत्न कर रहा था।

"हटो, रास्ते से! तुम मेरी माँ का रूप धारण कर मुझे धोखा नहीं दे सकते। मैं सब समझता हूँ।" कहते हुए पिंगल, पास पड़ी एक तलवार लेकर आगे बढ़ा। रूप बदलकर आया हुआ भूत, चिल्लाकर भाग खड़ा हुआ।

पिंगल ने अट्टहास किया। उसके बाद वह तलवार दूर फेंककर, बड़ी जल्दी अन्दर घुसा। रेशम के परदे, हवा के कारण मानों आवाज़ कर रहे थे। उन परदों के पीछे से चमकता हुआ एक उज्ज्वल आसन दिखाई दिया।

पिंगल, परदों को हटाकर अन्दर गया। रत्न, मणि से जड़े सिंहासन पर, महामायावी आँखें मूँदकर बैठा था, मानों योगनिद्रा में हो। पिंगल को एक क्षण यह भी सन्देह हुआ कि कहीं वह जीवित न हो। वह धीमे धीमे कदम बढ़ाते महामायावी के पास गया। उसकी नज़र महामायावी के दायें हाथ की अंगुलियों पर गई। उसने चमकती एक अंगूठी को देखा।

पिंगल ने, जल्द ही जिस काम के लिए वहाँ गया, वह काम पूरा कर लेना चाहा। उसने निर्भय हो, अंगुली में से अंगूठी उतार ली। अब उसे दो और चीज़ें लेनी थीं। रत्नों से जड़ी तलवार महामायावी के कमर में बँधी थी। पिंगल ने उसे भी लेकर अपने कमर में बाँध ली। अब भूगोल लेना बाकी रह गया था।

पिंगल ने चारों तरफ़ देखा। उसे एक तरफ़ सीढ़ियाँ दिखाई दीं। उन सीढ़ियों के नीचे, एक ऊँची मेज़ पर,

गोल, चान्द-सा चमकता भूगोल दिखाई दिया। पिंगल ने उसके पास जाकर उसमें देखा। उसमें विविध विविध देश, उनकी सीमायें, और काम करते उन देशों के निवासी दिखाई दिये। यह देख उसे बड़ा अचम्भा हुआ।

महामायावी की समाधि से जो तीन चीज़ें पिंगल को लेनी थीं, उसने ले लीं। उसने भूगोल को कन्धे पर रख लिया। फिर महामायावी के सिंहासन को देखता, बाहर निकलने लगा।

पिंगल ज्योंही महामायावी की समाधि वाले कमरे से निकला, त्योंही उसे सुन्दर, गान सुनाई दिया। "शाबाश, पिंगल! हम तेरे साहस और समझदारी की प्रशंसा करते हैं।"—किसी का मृदु स्वर में कहना, पिंगल के कान में पड़ा। कहीं यह आवाज़, महामायावी की ही हो, पिंगल ने पीछे मुड़कर देखा, पर महामायावी जैसे बैठा था, वैसे ही था। और वहाँ उसे कोई नहीं दिखाई दिया।

पिंगल जब द्वार पारकर बाहर आया तो पद्मपाद ने करतल ध्वनि की—"पिंगल, अब हम जीत गये हैं। इस संसार में अब ऐसी कोई शक्ति नहीं है, जो हमारा मुक़ाबला कर सके।"—वह कहता कहता आगे बढ़ा।

उसी समय नदी में इतनी भयंकर ध्वनि हुई, जैसे कोई ज्वालामुखी फूट पड़ा हो। फिर ताड़ के पेड़ के जितनी ऊँची पानी की धारा भूमि में से फूट पड़ी।

पद्मपाद उसको देखकर बहुत डर गया और भय के कारण, यकायक पीछे की ओर कूदा। (अभी और है)

लोमड़ी और कछुआ

एक दिन एक लोमड़ी को खाने को कहीं कुछ न मिला। उसे धीमे धीमे जाती हुई कोई अजीब चीज़ दिखाई दी। वह एक कछुआ था। लोमड़ी ने उसकी पूँछ पकड़कर उसे मारकर खाना चाहा। उसने उसकी पीठ पर पंजा मारा।

क्योंकि कछुए की पीठ बहुत सख़्त होती है, इसलिए लोमड़ी के हाथ को ही दर्द हुआ। कछुए को कुछ भी न हुआ।

कछुए ने लोमड़ी से पूछा—"मुझे पकड़कर सता क्यों रहे हो?"

"तुझे खाऊँगा। तेरी पीठ सख़्त क्यों है?" लोमड़ी ने कहा।

"जब तक मुझको कोई पानी में नहीं डुबा देता, तब तक मैं नहीं मरता हूँ। क्या तुम इतना भी नहीं जानते?" कछुए ने कहा।

तुरत लोमड़ी ने कछुए को पकड़कर पासवाली एक नदी में डुबोया। थोड़ी देर बाद उसने पूछा—"क्या मर गये हो?"

"अरे बाप रे बाप! मर रहा हूँ। मेरी पूँछ पकड़कर ऊपर खींचो। क्यों उस जड़ को पकड़ रखा है?" कछुए ने पूछा।

लोमड़ी ने सोचा कि उसने किसी पेड़ की जड़ पकड़ रखी थी, और उसने कछुए की पूँछ छोड़ दी। फिर क्या था! कछुआ लौटकर नदी में चला गया।

जानी दुश्मन

विक्रमार्क अपने हठ पर रहा। वह फिर पेड़ के पास गया। शव को उतारकर, कन्धे पर डाल श्मशान की ओर चल पड़ा।

तब शव में स्थित बेताल ने कहा—"राजा! तुम किसी और के लिये इतने कष्ट झेल रहे हो, इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। क्योंकि किसी जमाने में, मणिमन्त नाम के एक व्यक्ति ने अपने जानी दुश्मन प्रदीप के लिये, तीन महीने लगातार रात-दिन तकलीफ़ उठाई थी। उसकी कहानी सुनाता हूँ, सुनो।" उसने यह कहानी सुनाई :

बहुत पहिले अंग और विदेह देशों में प्रबल विरोध था। उन दोनों में सदा युद्ध होते रहते, और कुछ तय न होता। आख़िर एक भयंकर युद्ध में

विदेह पूरी तरह हार गया और अंग राजा ने उसको अपने आधीन कर लिया। विदेह राजा का कुटुम्ब दर दर भटकने लगा। अंग राजा के सेनापति मणिमन्त ने अपने को अंग का राजा और विदेह का सामन्त घोषित कर दिया।

युद्ध में विदेह देश का सेनापति मारा गया था। उसका पुत्र प्रदीप पास के पहाड़ों में जा छुपा। उसके साथ और भी कई युवक थे, जिन्होंने यह प्रतिज्ञा की थी कि भले ही प्राण चले जायें, वे देश को स्वाधीन करेंगे। उन्होंने प्रदीप को अपना नेता चुना।

वे युद्ध में मणिमन्त को जीत न सकते थे। उनके पास सिवाय तलवारों के और कोई अस्त्र-शस्त्र न था। वे सब मिलकर पन्द्रह से भी अधिक न थे। ऐसी हालत में मणिमन्त को जीतना कोई मामूली बात न थी। मणिमन्त के पास सब प्रकार की सेना थी। अगणित अस्त्र-शस्त्र थे।

"हमारे पास शस्त्र नहीं हैं, सैनिक नहीं हैं, यह सोचकर यदि हम चुप बैठे रहें तो हमारी प्रतिज्ञा पूरी नहीं होगी। अगर हम नियमानुसार युद्ध नहीं कर सकते हों, तो हमें नियमों का उल्लंघन करके ही, जैसे तैसे शत्रु का नाश करना होगा।" प्रदीप ने अपने मित्रों से कहा।

उसकी देखरेख में, नौजवानों ने लुके-छुपे, अपने ही ढंग से युद्ध शुरू कर दिया। अंग और विदेह के रास्ते में काफ़ले आते-जाते रहते थे। प्रदीप के आदमी उन्हें लूटा करते थे। जंगलों में रहनेवाले उन युवकों के लिए रसद पाने का और कोई रास्ता न था।

वे रात में, विदेह जाते, और यदि वहाँ मणिमन्त के सम्बन्धी मिलते, तो

उनकी हत्या कर देते। एक दिन उन्होंने मणिमन्त के दोनों लड़कों को मार दिया।

प्रदीप के आदमियों के हत्या-काण्ड को देखकर भी मणिमन्त ने कुछ न किया, मानों उसने देखा ही न हो। उसका ख्याल था कि वे शीघ्र जान जायेंगे कि जो काम वे कर रहे थे, वह अति नीच था। पर जब उन्होंने उसके दो लड़कों को लुके-छुपे मार दिया, तो उसे बहुत गुस्सा आया।

मणिमन्त ने अपने सरदारों में से एक योग्य सरदार को बुलाकर कहा—"तुम साथ कुछ सैनिकों को ले जाओ और पहाड़ों में रहनेवाले उस दल को मारकर आओ। मगर प्रदीप को किसी भी हालत में न मारना। कुछ भी हो, उसको जीते जी पकड़कर लाना।"

सरदार उसकी आज्ञानुसार सौ सैनिकों को लेकर, उन पहाड़ों में गया, जहाँ प्रदीप का दल रहा करता था। बड़ी मुश्किल से उन्हें प्रदीप के दल का ठिकाना पता लगा। उन्होंने उसे चारों ओर से घेर लिया।

"यह आख़िरी मुठभेड़ है। जी जान से लड़ो। दुश्मन के सामने घुटने न टेकना।" प्रदीप ने अपने दल के लोगों

से कहा। उनमें से एक एक ने मणिमन्त के दस आदमियों से मुक़ाबला किया। उनमें से आधे सैनिकों को मारकर वे स्वयं मर गये। केवल प्रदीप ही रह गया।

परन्तु उसको जीते जी पकड़ने में सरदार को बड़ी दिक्कत हुई। यूँ तो वह बड़ा अच्छा योद्धा था, फिर उसको प्राणों की भी परवाह न थी। आख़िर सरदार ने उसके सिर पर पीछे से वार किया। वह बेहोश गिर गया।

उसी दिन रात प्रदीप को मणिमन्त के पास ले जाया गया। वह मरा तो नहीं था, पर उसकी हालत बड़ी नाजुक थी। राज-वैद्य ने उसकी परीक्षा करके बताया कि उसका जीवित रहना बड़ा कठिन था।

"यह नहीं! इसको जीवित रहना होगा! तुम पूरी कोशिश करके इसको बचाओ।" मणिमन्त ने राज-वैद्य से कहा।

वैद्य ने रात दिन, रोगी की सेवा-शुश्रूषा की। सप्ताह भर प्रदीप को होश न आई। उसके बाद तीन सप्ताह तक, वह कभी होश में रहता, तो कभी बेहोश।

एक महीने बाद राज-वैद्य ने मणिमन्त को बताया—"अब डर नहीं है, यह बालक
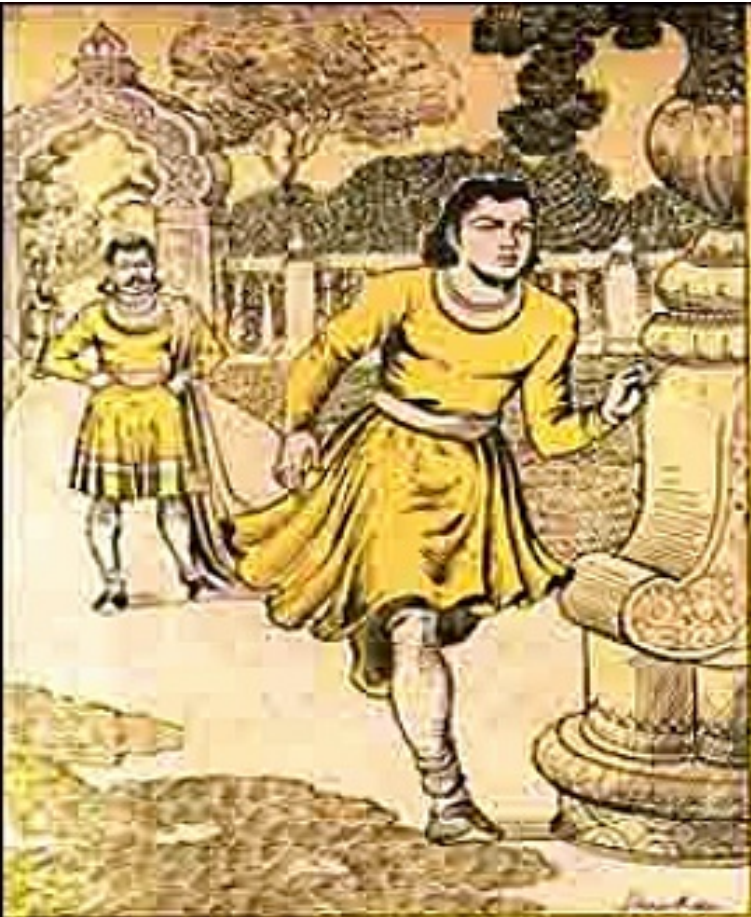
फिर जी सकेगा।" महीने भर न राज-वैद्य ने कुछ खाया-पिया, न मणिमन्त ने ही। दोनों सोये भी नहीं।

जब यह मालूम हुआ कि प्रदीप जीवित रह सकेगा तो मणिमन्त की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। जब होश में आकर प्रदीप ने मणिमन्त को पहिचाना, तो उसके मुख से निकला "आप!"

"....हाँ....बेटा, मैं ही हूँ। कोई डरने की बात नहीं। तुम ठीक हो जाओ, यही मैं चाहता हूँ, भले ही इसके लिए मुझे सर्वस्व देना पड़ जाये। तुम घबराना नहीं।"

इसमें कोई अतिशयोक्ति न थी। क्योंकि मणिमन्त हमेशा उसके बिस्तरे के पास रहता, उसकी हर तरह से उपचर्या करता आया था। अपने हाथ से उसको भोजन खिलाता। प्रदीप स्वस्थ हुआ तो इसका कारण राज-वैद्य की औषधियों की अपेक्षा मणिमन्त की सेवा-शुश्रूषा अधिक थी।

प्रदीप को चलना तक फिर से सीखना पड़ा। मणिमन्त उसको, रोज़ ले जाकर बाग़ में चलवाता। जब वह चलने लगा तो एक दिन मणिमन्त ने प्रदीप से पूछा—"क्या भाग सकते हो बेटा?" प्रदीप ने भागने की कोशिश की, पर वह भाग न सका।

तीन महीने बीत गये। रोज़ की तरह मणिमन्त ने फिर प्रदीप से पूछा—"क्यों? बेटा, भाग सकते हो?"

"हाँ...." प्रदीप कुछ दूर तक कूदा, फिर भागा।

"अच्छा, तो तुम यहीं ठहरो, मैं अभी आता हूँ।" कहकर मणिमन्त महल में चला गया। प्रदीप न जान पाया कि वह क्यों गया था। वह वहीं स्तब्ध हो उसकी प्रतीक्षा में खड़ा रहा।

थोड़ी देर बाद मणिमन्त वापिस आ गया। उसके हाथ में दो तल्वारें थीं।

"ये किसलिए!" प्रदीप ने पूछा।"

"हम दोनों के द्वन्द्वयुद्ध के लिए।" मणिमन्त ने कहा। उसकी आँखे अंगारे हो रही थीं।

"द्वन्द्व युद्ध! किसलिए!" प्रदीप ने पूछा।

"तू मेरा जानी दुश्मन है। मेरे दो लड़कों को तूने लुके-छुपे मारा। मैं तुझे धर्म युद्ध में मार देना चाहता हूँ। इसके लिए ही मैंने मौत के मुँह से तेरी रक्षा की थी। अब मुझे बदला लेने का मौका मिला है।" मणिमन्त ने कहा।

प्रदीप ने उसकी दी हुई तलवार को लेने से इनकार कर दिया। मुँह नीचे किये खड़ा रहा।

"तल्वार पकड़ो! अब तक तो तुम कायर की तरह लड़ते रहे। कम से कम वीर की तरह मरो तो। मुझ से बिना युद्ध किये तुम नहीं जा सकते।" कहते हुए मणिमन्त ने उसके हाथ में तलवार रखी।

प्रदीप को मति भ्रम-सा हुआ। पर जब मणिमन्त तलवार लेकर उस पर लपका, तो उसने आत्म-रक्षा में अनायास तल्वार उठाई। वह आत्म-रक्षा के लिए लड़ रहा था, वह मणिमन्त को घायल न करना चाहता था।

तब भी थोड़ी देर बाद, प्रदीप की तलवार मणिमन्त के हृदय में आ लगी। प्रदीप ने तल्वार फेंक दी, और वह इस तरह रोया, जैसे उसका अपना पिता मारा गया हो।

मणिमन्त के मरते ही, विदेह में चेतना-सी आ गई। उन्होंने प्रदीप को राजा चुना और अंग देश के सैनिकों को भगा दिया।

प्रदीप ने मणिमन्त के कुटुम्बवालों को बड़ी बड़ी जागीरें देकर अपना ऋण चुका दिया।

बेताल ने यह कहानी सुनाकर पूछा—"राजा! मुझे एक सन्देह है! वीरता और उदारता में कौन बड़ा है? क्या यह मणिमन्त है, जिसने अपनी जानी दुश्मन की प्राण रक्षा करके, उसको धर्म-युद्ध में मारना चाहता था? या प्रदीप, जिसने चोरी चोरी उसके दो लड़कों को मार दिया था और मणिमन्त से लड़ने के लिए हिचकिचाया था? इस प्रश्न का उत्तर जानकर भी न दिया तो तुम्हारा सिर फूट जायेगा।"

"इसमें सन्देह की कोई बात नहीं है। वीरता और उदारता में, मणिमन्त की अपेक्षा प्रदीप ही बड़ा है। उसने नियमों का उल्लघंन कर युद्ध किया था तो देश के लिए ही। क्योंकि तब धर्म युद्ध किया नहीं जा सकता था। मणिमन्त से वह अच्छा योद्धा भी था, यह उनकी आख़िरी मुटभेड़ ने सिद्ध भी कर दिया। मणिमन्त की उदारता कपटभरी थी। उसने प्रदीप की सेवा-शुश्रूषा इसलिए की थी, क्योंकि उसका ख्याल था कि आसानी से वह प्रदीप को धर्म-युद्ध में मार सकेगा, और इस तरह विदेहवासियों को प्रभावित कर सकेगा। मणिमन्त को यह न सूझा कि प्रदीप उससे अच्छा योद्धा भी हो सकता था। प्रदीप का भी यही ख्याल था कि उसकी उदारता सच्ची थी। जब उसे मालूम हुआ कि वह सच्ची उदारता न थी, तो उसे ऐसा लगा, जैसे उसकी अक्ल मारी गई हो। मणिमन्त की अपेक्षा प्रदीप ही बड़ा है।" विक्रमार्क ने कहा।

राजा का इस प्रकार मौन भंग होते ही, बेताल शव के साथ अदृश्य हो गया और फिर पेड़ पर जा बैठा। (कल्पित)

A. Satyam

प्रतीकार

कैरो नगर में मंसूर नाम का एक नवयुवक रहा करता था। उसने एक जोड़ी बुलबुल खरीदी। उनको एक पिंजरे में रखकर, घर के सामने लटका दिया। बुलबुल आते-जाते लोगों का गा-गाकर मनोरंजन करतीं। कई वहाँ थोड़ी देर रुकते और उनका गाना सुनकर जाते।

उस रास्ते एक दिन एक अधिकारी आया। वह खलीफ़ा के अंगरक्षकों का मुखिया था। उसका नाम अबूसेफ़ी था। पत्थर का दिल था उसका। इसलिए लोग उसे "शैतान का बच्चा" कहा करते।

अबू ने रुककर बुलबुल का गाना सुना। फिर उसने मंसूर के घर में घुसकर पूछा— "दो दिराम दूँगा। क्या बुलबुल बेचोगे?"

"माफ़ कीजिएगा, वे बिकाऊ नहीं हैं।" मंसूर ने साफ़ साफ़ कहा।

अबू पैसे बढ़ाता गया। आखिर उसने कहा—"दो सोने की दीनारें दूँगा।" तब मंसूर उन्हें बेचने के लिए मान गया।

"मैं सीधे घर जा रहा हूँ। पिंजरा लेकर मेरे साथ आओ और पैसे लेते जाओ।" अबू ने कहा।

दोनों अबू के घर गये। अबू ने मंसूर से पिंजरा लेकर, घर के अन्दर जाते हुए कहा—"यहीं ठहरो! मैं तुम्हें पैसे लाकर दे देता हूँ।"

मंसूर बहुत देर खड़ा रहा। आखिर उसने किवाड़ खटखटाया। एक सिपाही ने आकर किवाड़ खोले। "तुम क्या चाहते हो? कौन हो तुम?" उसने पूछा।

"मैं इस घर के मालिक का नाम नहीं जानता। इतना जानता हूँ कि उन्हें, मुझे दो दीनारें देनी हैं।" मंसूर ने कहा।

कुमारी रज़िया

"उनका नाम अबू है। सब उसे "शैतान का बच्चा" कहकर पुकारते हैं। वे किसी का उधार नहीं रखते। यह कभी नहीं हो सकता।" सिपाही ने कहा।

मंसूर तंग आ गया। "शैतान का बच्चा हो, तब क्या, बाप हो तब क्या? मेरी बुल्बुल की जोड़ी को उसने खरीदा है। उसे मुझे दो दीनारें देनी हैं। मुझे पैसे दे दे, नहीं तो मेरी बुल्बुल मुझे वापिस कर दे।" उसने कहा।

"अरे भाई! साँप से न खेलो। अगर तुम ने हमारे मालिक को गुस्सा दिलाया तो तुम जिन्दा नहीं रहोगे। इस शहर में कोई ऐसा नहीं है, जो उन्हें देखकर न डरता हो। इसलिए, जो हो गया, सो हो गया। तुम अपने रास्ते चले जाओ। नहीं तो फ़ाल्तू आफ़त में फँसोगे।" सिपाही ने कहा।

"जब मैं ही नहीं डर रहा हूँ तो तुम क्यों डर रहे हो? मालिक को ज़रा एक बार बाहर आने दो, मैं उनसे निबट लूँगा।" मंसूर ने, बिना कुछ परवाह किये कहा।

"सिपाही को अचरज हुआ। फिर वह मंसूर के बारे में कहने के लिए

मालिक के पास अन्दर गया। मंसूर भी उसके पीछे चला।

सिपाही की बात सुनकर अबू ने गुस्से में कहा—"अरे, इसकी इतनी हिम्मत! अन्दर भेजो, मैं उसकी खबर लूँगा।"

"मैं यहाँ हूँ, हुज़ूर!" कहता हुआ मंसूर सामने आ खड़ा हुआ।

"तुम्हें यहाँ क्या काम है?" अबू ने डाँट बताई।

"हुज़ूर, आपने एक घंटे पहिले मेरे पास से दो बुल्बुलें खरीदी थीं। मुझे मेरी दो दीनारें दिलवाइये। नहीं तो मेरी बुल्बुलें वापिस कर दीजिये। मैं चला जाऊँगा।" मंसूर ने कहा।

"अरे गधे! तुझे पैसे देने हैं? जा बाहर! नहीं तो हड्डी-पसली एक कर दूँगा। हट।" अबू गरजा।

मंसूर क्या करता? यह सोचकर कि इस धाँधली के विरुद्ध कुछ न कुछ करना होगा, वह अपने घर चला गया।

अबू के घर के पास एक बड़ा कुँआ था। आसपास की औरतें, उस कुँए से पानी ले जाती थीं। मंसूर ने स्त्री का वेष धरा। महीन कपड़े का बुरका पहिन, हाथ में काठ की बाल्टी लेकर, वह कुएँ के पास गया। जब तक अबू उस तरफ़ से न गुज़रा, वह वहीं अपना वक्त काटता रहा। जब उसका शत्रु उस तरफ़ से गुज़रा तो मंसूर ने काठ की बाल्टी धड़ाम से कुएँ में फेंक दी। "अरे, नयी बाल्टी है। कुएँ में गिर गई। मुझे मार देंगे। क्या किया जाय?" वह औरत की आवाज़ में रोने-धोने लगा।

अकेले किसी औरत को रोता देखकर अबू ने पास आकर पूछा—"क्यों? क्या बात है? क्या हुआ? बताओ!"

मंसूर ने कुएँ में झुककर देखते हुए कहा—"वह देखो मेरी बाल्टी।"

अबू भी कुएँ में झुककर देखने लगा। तुरत मंसूर ने उसके पैर उठाकर, उसे कुएँ में धकेल दिया। उस दुष्ट को कुएँ में धकेलकर मंसूर सीधे अपने घर गया। और तुरन्त उसने अपना घर एक और मोहल्ले में बदल लिया।

अबू कुएँ में गिरकर मरा नहीं, क्योंकि कुआँ उतना गहरा न था। जब वह कुएँ में गिरा तो उसको कई जगह चोट भी लगी। वह कुएँ से बाहर न निकल सका। ज़ोर ज़ोर से चिल्लाने लगा—"मुझे ऊपर खींचो।"

पानी के लिए आई हुई औरतों ने जब यह सुना तो वे घबराईं। उन्होंने कुएँ में देखा, पर वे अबू को न पहिचान सके।

"उन्होंने कुएँ में झुककर पूछा—"तुम कौन हो! शैतान हो, या उसके बच्चे!"

यह जानकर कि उन स्त्रियों ने उसे पहिचान लिया है, उसने कहा—"हाँ हाँ, मैं शैतान का बच्चा हूँ।"

औरतों की घबराहट और भी बढ़ गई। उन्होंने एक बड़े पत्थर को उठाकर कुँए में
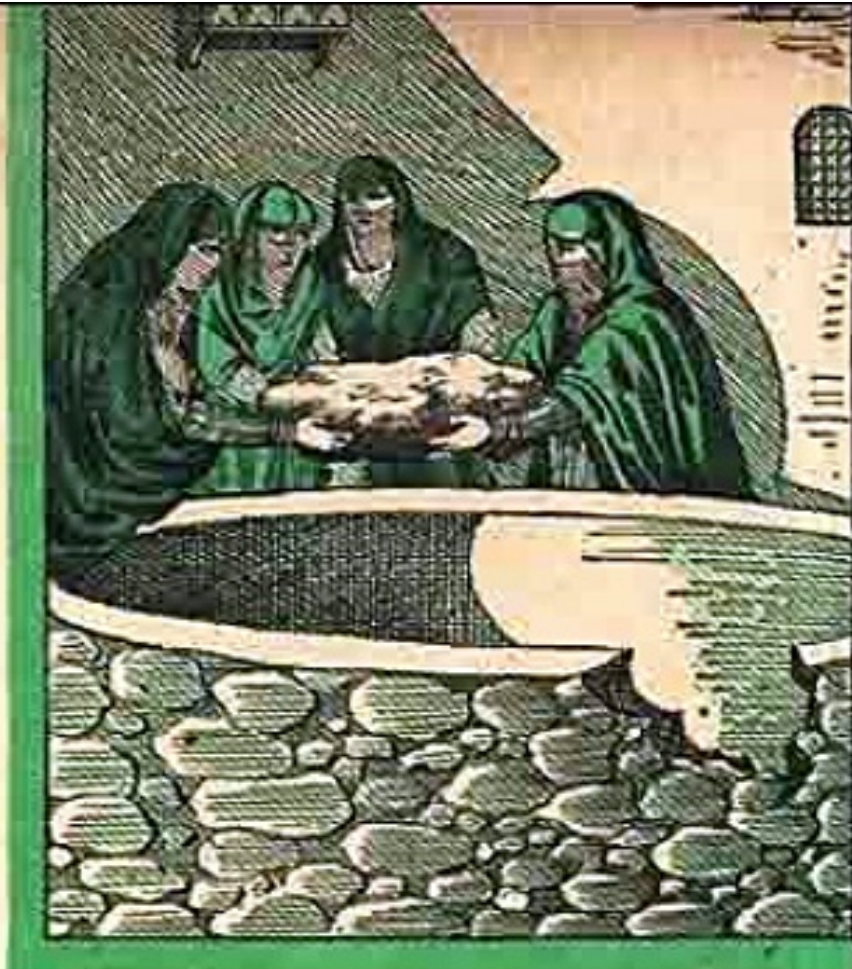
फेंकते हुए कहा—"तो तू यहीं मर" वे बिना पानी लिये, चिल्लाती चिल्लाती अपने घर वापिस चली गयीं।

सौभाग्य से, वह पत्थर अबू के सिर पर न पड़ा।

यह अफ़वाह फैल गई कि उस कुएँ में शैतान आ पड़ा है। इसलिए उसमें से किसी को पानी नहीं लेना चाहिए। यह औरतों की अफ़वाह मर्दों के पास भी गई। आख़िर बात क्या थी, यह देखने वे कुएँ के पास गये। उनकी सहायता से अबू बाहर निकला। पर उसकी आँख

छूट चुकी थी। लोगों ने उसे उसके घर पहुँचा दिया।

अबू को बहुत जगह चोट लगी थी। उसे बड़ा दर्द होता, रात भर नींद न आती। हकीमों ने आकर दवा दी, पर कोई फ़ायदा नहीं हुआ।

मंसूर का प्रयत्न सफल नहीं हुआ। अबू जीवित बाहर निकल आया था। वह जानता था कि बदला लेने में अबू साँप की तरह था। अगर उसको न मारा गया तो वह ही उसे मार देगा। इसलिए ज़रूर कुछ न कुछ करना है।

मंसूर ने एक बूढ़े हकीम का वेष धरा। सफ़ेद दाढ़ी लगाई। पीठ भी कुबड़ी कर ली। कुछ दवाइयाँ लेकर, वह उस गली में गया, जहाँ अबू रहा करता था।

अबू के नौकरों ने उसे रोक कर पूछा—"हकीम जी! हमारे मालिक चोटों के कारण परेशान हैं। क्या आप उनका इलाज कर सकेंगे?"

"कोई भी बीमारी हो, मैं इलाज कर सकता हूँ।" मंसूर ने कहा।

नौकरों ने अबू के पास जाकर हकीम के बारे में बताया। जब उसको पता लगा

कि वह हकीम कुबड़ा था, तो उसका इरादा बन गया। उसका ख़्याल था जो ऐसे होते थे, साधारणतया वे अधिक अक़्लमन्द होते हैं।

मंसूर ने अन्दर आकर रोगी की परीक्षा करने का अभिनय किया। और कहा कि वह कषाय बनाकर पिये। कषाय पीते ही अबू कै करने लगा।

"यह क्या हकीम जी?" अबू ने पूछा।

"मैंने बहुत बढ़िया दवा दी है। तुम्हारे मन में कोई मलाल है। नहीं तो दवा का यह असर न होता। कहो, क्या तुमने किसी से बदला लेने की सोची है?" मंसूर ने पूछा।

तुरत अबू को मंसूर की याद आई।

"बदले की क्या बात है! जब तक मैं उसकी बोटी बोटी नहीं कटवा दूँगा, तब तक चैन नहीं लूँगा।" तिल-मिलाते हुए अबू ने कहा।

"जब तक तुम ऐसे बुरे ख़्याल नहीं छोड़ दोगे, तब तक तुम्हारी बीमारी ठीक नहीं होगी।" मंसूर ने कहा।

"जब ठीक होनी होगी, तब होगी। पर मैं उस मंसूर को नहीं छोड़ूँगा। उसने

मेरी कितनी फ़जीहत की है। उसकी इतनी हिम्मत कि मेरी पगड़ी उछाले।" अबू ने कहा।

"यह बात है, तो पहिले तुम्हारे मन को शान्त करने के लिए दवा तैयार करनी होगी।" कहते हुए, मंसूर ने सब नौकरों को एक एक चीज़ के लिए बाहर भेज दिया।

फिर उसने अपनी दाढ़ी निकाल दी। पीठ भी सीधी करके कहा—"मैं मंसूर हूँ। इधर उधर की झूठमूठ बातें न बनाओ। मुझे मेरे पैसे वापिस कर दो। मेरी बात में दख़ल न देना। मैं तुम से डरनेवाला नहीं हूँ।"

अबू की हालत ख़राब थी। वह कमज़ोर था। पर तब भी वह मंसूर से भिड़ पड़ा।

मंसूर ने हँसते हुए कहा—"तू मुझे क्या मारेगा! मैंने तुझे पहिले ही विष दे दिया है। यह लो मेरे पास वह दवा भी है, जो इस विष का असर हटा देगी। दो सौ दीनारें दोगे, तो मैं वह दवा दूँगा। नहीं तो तेरा वक्त आ गया है। एक घंटे से अधिक न जिओगे।"

अबू डर गया। उसने कराहते कराहते दो सौ दीनारें मंसूर के हाथ में रखते हुए कहा—"विष को हटाने के लिए जल्दी दवा दो। नहीं तो मर जाऊँगा।"

अबू का डर और मौत का भय देखकर मंसूर मन ही मन हँसा। उसने अपने जेब में से एक शीशी निकाली, और उसमें से एक दवा निकालकर अबू के गले में डाली। वह मीठी थी। अबू को जीने की उम्मीद बँधी।

"अब मौत का भय नहीं है।" कहते हुए मंसूर दो सौ दीनारें लेकर, अपने घर चला गया।

नाविक सिन्दबाद

मैंने निश्चय किया कि मैं फिर समुद्र-यात्रा पर नहीं जाऊँगा। उम्र हो रही थी। घर में रहने की इच्छा होती थी। विदेशों में वर्षों घूमने-फिरने की मर्ज़ी न थी। ज़िन्दगी में जितनी मुसीबतें झेलनी थीं, वे सब झेल चुका था। बग़दाद में मुझसे बड़ा कोई रईस न था। ख़लीफ़ा भी मुझे कभी कभी बुलवा लेते थे और मेरे अनुभव बड़े ध्यान से सुना करते थे।

एक बार हसन अल रशीद ने मुझे बुलवाया। मैं अपनी समुद्र यात्रा की कहानी सुनाने को तैयार हो रहा था कि ख़लीफ़ा ने मुझ से कहा—'सिन्दबाद! मैंने उस इथोपिया के राजा को जवाब लिखा है। कुछ भेंट-उपहार भी इकट्ठे किये हैं। तुम ही ले जाकर उन्हें दो। वहाँ का रास्ता तुम्हारे सिवाय और कोई नहीं जानता। यही नहीं, तुम्हें फिर देखकर वे बड़े सन्तुष्ट होंगे। आज ही तुम जाओ। यह ठीक नहीं कि वे हमारे जवाब का इन्तज़ार करें।

सातवीं समुद्र यात्रा।

मुझे ऐसा लगा जैसे आँखों के सामने कोहरा छा गया हो। मैं बहुत घबरा गया। यह सोचकर कि कहीं खलीफ़ा नाराज़ न हों, मैंने कहा कि मैं यात्रा के लिए तैयार हूँ। उन्होंने मार्ग-व्यय के लिए दस हज़ार दीनारें दीं। उन्होंने अपने हाथ से लिखा जवाब, और इथोपिया के राजा को देने के लिए उपहार मुझे दिये। उनमें एक लाल मखमल का गद्दा, दो और रंग के गद्दे, सौ रेशम के थान, रत्नों से जड़ी सुराई, दो अच्छी नस्ल के अरबी घोड़े, कितनी ही चीज़ें थीं।

जाने की मेरी कतई इच्छा न थी। फिर भी मैं बग़दाद से बसरा गया। वहाँ जाकर एक जहाज़ पर सवार हुआ। दो महीने की यात्रा के बाद, मैं उस द्वीप में पहुँचा, जहाँ इथोपिया का राजा रहता था। खलीफ़ा के दिये हुए जवाब और उपहार उसको दे दिये। उसनी खलीफ़ा की उदारता की खूब प्रशंसा की। उसने मुझे वहाँ काफी दिन रहने के लिए कहा। परन्तु मैं कुछ दिन ही रह सका। उससे विदा लेकर, उसके दिये हुए पत्र और भेंट को लेकर मैं जहाज़ में फिर बसरा के लिए रवाना हुआ।

क्योंकि हवा अनुकूल थी, इसलिए वापिसी यात्रा मज़े में शुरू हुई। कोई रुकावट नहीं आयी। रास्ते में तीन द्वीपों में, यात्रियों ने खरीद-फ़रोख़्त की। उस द्वीप के छोड़ने के सात दिन बाद, एक दिन खूब ज़ोर से बारिश शुरू हुई। कहीं हमारा माल न भीग जाये, इसलिए हमने उनको कपड़ों से ढ़ँक दिया और अल्लाह को याद किया। इस बीच कप्तान ने मस्तूल पर चढ़कर इधर उधर देखा। जब वह नीचे उतरा तो उसके चेहरे पर हवाइयाँ

उड़ रही थी। वह हमारी तरफ़ इस तरह देखने लगा, जैसे कोई मुर्दा हो। फिर अपनी दाढ़ी नोंचने लगा। हम सब भाग कर उसके पास गये और घबराते हुए हमने पूछा—"क्या बात है?"

"अब हमें मौत निगलने जा रही है। अल्लाह को याद करो। अगर हमारी कोई मदद कर सकता है तो वह ही कर सकता है, और कोई नहीं। जो कुछ लेना-देना है, सो कर लीजिए। रास्ते से भटक आये हैं। अब हमारी ख़ैरियत नहीं।"

फिर उसने अपने थैले में से एक डिब्बी निकाली। सुँघनी ली। एक किताब देखकर कहा—"जिसका मुझे डर था, वह ही हुआ। वह जो किनारा दिखाई दे रहा है, वह बड़ा ख़तरनाक है। वहाँ भयंकर सर्प और जन्तु हैं। समुद्र में इतने बड़े बड़े मच्छ हैं कि वे जहाज़ को भी निगल सकते हैं। जो बात है, सो मैंने कह दी है। आगे अल्लाह की मर्ज़ी।"

उसने कहा ही थी.... कि हमारा जहाज़ ऊपर उठा....और फिर पानी में जा गिरा। हमारा कलेजा थम-सा गया। सारा समुद्र उफनाता-सा लगा। इस उपद्रव का कारण तीन बड़े बड़े मच्छ थे। वे पहाड़ जैसे थे। हमारे जहाज़ का पीछा करते आ रहे थे। उनमें से एक बड़ा मच्छ जिसका मुख इतना बड़ा था, मानों कोई पहाड़ की घाटी हो, फैलाए हमारे जहाज़ के पास आया। ज्योंही जहाज़ उसके मुख में गया, त्योंही मैं समुद्र में कूद पड़ा। मैं पानी में गिरा ही था कि उस मच्छ ने जहाज़ को निगल लिया। फिर वे मच्छ समुद्र में डूबकर कहीं चले गये।
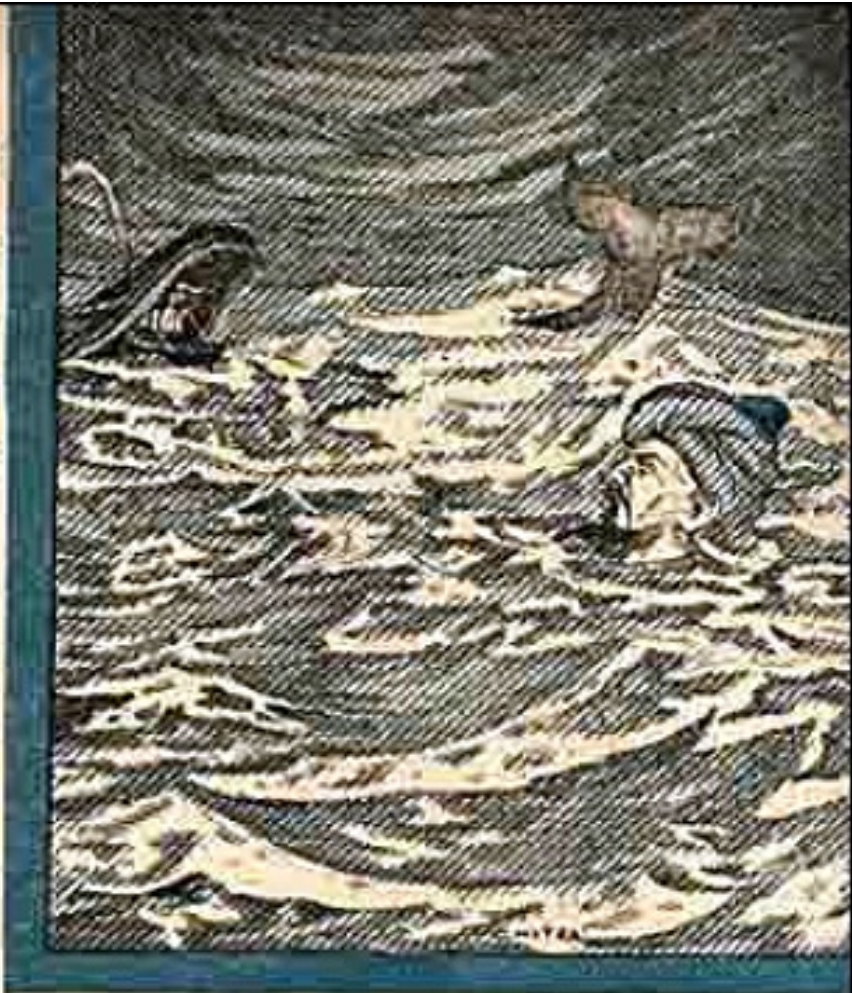
जब वे मच्छ जहाज़ को चबा रहे थे, तो एक शहतीर बाहर आ गिरा। मैं उस

पर चढ़कर, बहुत समय तक थपेड़े खाता, इधर उधर बहता रहा। आख़िर में एक द्वीप में पहुँचा। उस द्वीप में फलों के वृक्ष थे। तेज़ बहने वाली एक नदी भी थी। मैंने उस नदी में यात्रा करनी चाही; क्योंकि मणियों के द्वीप में नदी ने ही मेरी रक्षा की थी। "यह नदी बचायेगी तो बचायेगी, नहीं तो मेरी मुसीबतें ख़तम हो जायेंगी। यही मेरी आख़िरी यात्रा है" यह सोच मैंने कुछ फल खाये। पेड़ की टहनियों को इकट्ठा करके एक तमेड़ बनाई। मैं तब न जानता था कि ये टहनियाँ शुद्ध चन्दन की थीं। टहनियों को मिलाकर बाँधने के लिए कहीं रस्सी भी न थी। मज़बूत बेलों को लेकर, मैंने तमेड़ तैयार की। उस पर मैंने फल जमा कर लिए। मैंने किनारे से तमेड़ धकेली ही थी कि वह बाण की तरह बहाव में चलने लगी। उस तेज़ी के कारण मेरा सिर चकरा गया और मैं फलों के ढेर पर गिर गया।

कुछ दूर जाने के बाद, मुझे शोर सुनाई दिया। नदी झाग हो रही थी। वह इतनी तेज़ बह रही थी कि कुछ नहीं कहा जा सकता। आगे देखने पर

लगता था, जैसे यकायक नदी कहीं लुप्त हो गई हो। शोर से अनुमान किया जा सकता था कि वहाँ एक प्रपात था। और मेरी तमेड़ बाण की गति से उस तरफ़ जा रही थी।

बस, मैंने सोचा कि मेरी ज़िन्दगी ख़तम हो गई है। मैं नहीं चाहता था कि प्रपात में गिर कर जब मेरा शरीर टुकड़ा टुकड़ा हो रहा हो, तो मैं अपनी आँखों अपनी मुसीबत देखूँ। इसलिए आँखें मूँदकर, तमेड़ ज़ोर से पकड़कर मैं लेट गया। मैं अल्लाह की याद करने लगा।

वह तमेड़ प्रपात के किनारे तक गई और यकायक रुक गई। मैंने आँखें खोलीं। क्या देखता हूँ कि मैं और मेरी नाव बड़े जाल में फँसी हुई थी। जाल फेंकनेवाले किनारे पर खड़े थे। उन्होंने मुझे और मेरी तमेड़ को किनारे पर खींच लिया।

मैं रहे सहे प्राण लेकर, सरदी के कारण काँपता काँपता पड़ा हुआ था। सफ़ेद दाढ़ीवाले एक बूढ़े ने तरस खाकर, मुझ पर गरम कपड़े ओढ़े। मेरे सारे शरीर की मालिश की। उसकी उपचर्या
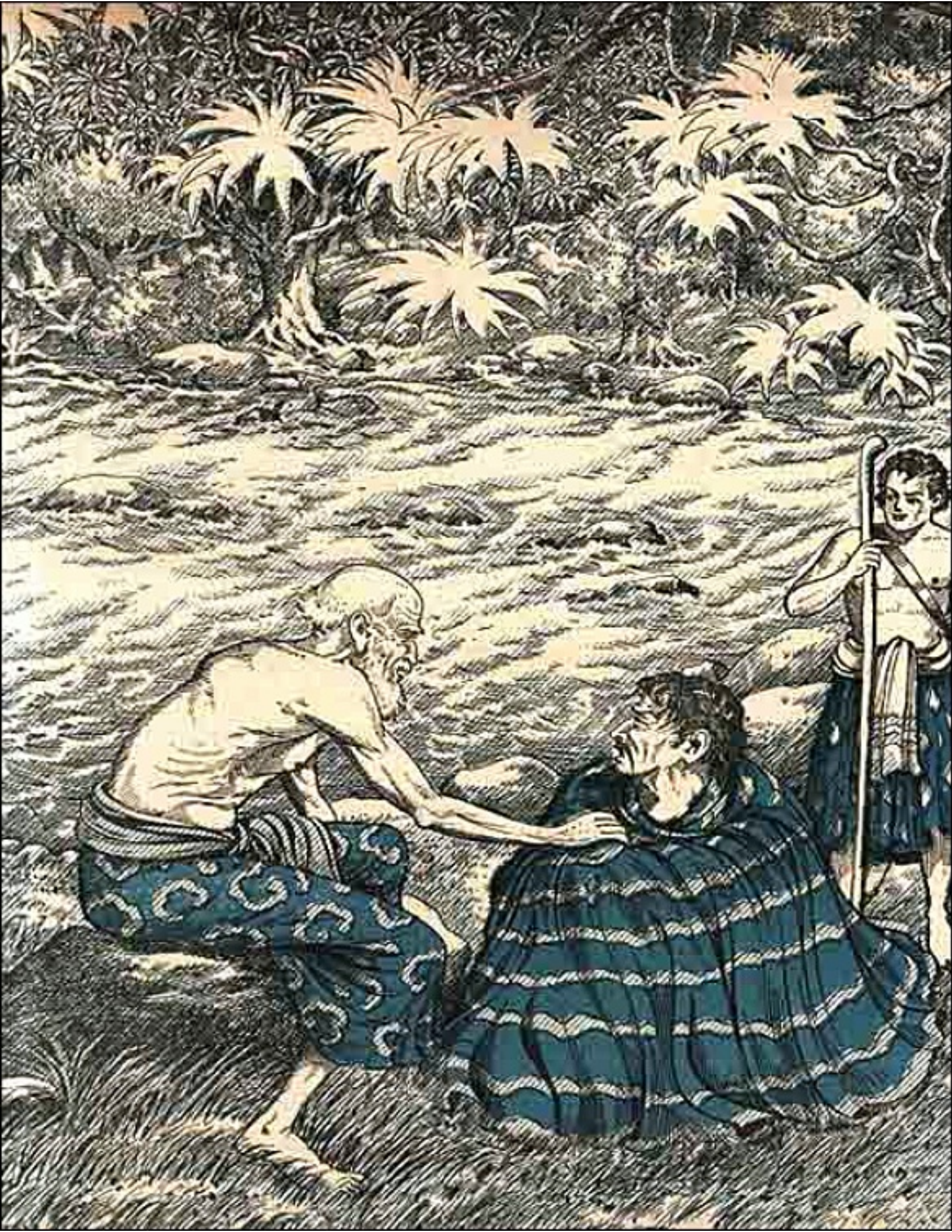
के कारण मेरी जान में जान आई। मैं उठकर बैठ गया। पर मेरे मुख से बात न निकल रही थी। बूढ़ा मुझे पकड़कर स्नानागार ले गया। उसने वहाँ मुझे स्नान कराया। सुगन्धित तेल लगाये। फिर वह मुझे अपने घर ले गया। घरवालों ने मुझे बड़े स्नेह से देखा-भाला। बैठने के लिए उन्होंने आसन दिया और खाने के लिए उत्तम भोजन। फिर उसने मुझे एक कमरा दिया और मेरी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए कई गुलामों को छोड़कर, वह अपने काम पर चला गया। इस तरह तीन दिन बीत गये। न बूढ़े ने मुझसे कुछ पूछा, न किसी और ने ही। इन तीन दिनों में मैं जैसा था, वैसा फिर हो गया।

चौथे दिन बूढ़े ने आकर पूछा—"आपको किसी चीज़ की कमी तो नहीं? अल्लाह की मेहरबानी से मैं उस समय वहाँ था। इसलिए आपकी रक्षा कर सका। मगर आप कौन हैं? कहाँ से आ रहे हैं?"

मैंने कृतज्ञता प्रकट कर, अपनी सारी कहानी सुनाई। मैंने कहा कि मैं व्यापारी हूँ। मैंने बहुत बार समुद्र-यात्रा की है। वे एक घंटा, जो कुछ मैंने कहा, सुनते रहे। फिर उन्होंने कहा—"यह बात है तो आप अपना माल तुरत बेच दीजिये। क्योंकि यह बहुत बढ़िया है। यहाँ उसके अच्छे दाम हैं।"

यह सुन मुझे आश्चर्य हुआ। वे क्या कह रहे थे, मुझे कुछ समझ में न आया। क्योंकि मेरे पास कुछ न था। सिवाय पहिने हुए कपड़ों के, कोई माल न था। मगर मैंने यह उसे बताया नहीं। सिर्फ़ यह कहा—"अच्छा, ऐसा ही करेंगे।"

"तब देरी किस बात की! आइये बाज़ार चलें। अच्छा भाव मिले तो

बेच देंगे, नहीं तो आप उसे मेरे गोदाम से न निकलवाइये।" बूढ़े ने कहा।

"आपकी जैसी इच्छा। मैं आपके हाथों में हूँ। आप जैसा मुनासिब समझें वैसा कीजिये। मुझसे कुछ कहने की ज़रूरत भी नहीं है।" मैंने ही मन ही मन अचरज करते हुए कहा।

उसके बाद हम सब मिलकर बाज़ार गये। मेरे आश्चर्य की कोई हद न थी। मेरी तमेड़ वहाँ थी। व्यापारी और दलाल, उसको गौर से देख रहे थे। "या खुदा! यह बहुत बढ़िया चन्दन है। मैंने कहीं भी इतना अच्छा चन्दन नहीं देखा है!" आदि बातें मुझे सुनाई दे रही थीं। मेरा माल क्या था, तब मुझे मालूम हुआ। परन्तु मैं कुछ न बोला। मैंने अपनी गम्भीरता बनाये रखी। वृद्ध की अनुमति पर नीलामी शुरु हुई। किसी ने कहा—एक हज़ार दीनार। बूढ़े ने कहा—"दो हज़ार" किसी और ने कहा—तीन। दस हज़ार तक दाम गया। तब नीलाम करनेवाले ने मेरी तरफ़ देखकर पूछा—"क्या दस हज़ार पर छोड़ दूँ!" मैंने कहा—"नहीं।"

तब वृद्ध ने मेरी ओर देखकर—"इससे अधिक दाम देना मुश्किल है। व्यापार में मन्दी है। चाहें तो आप दो तीन सौ और ले लीजिये और मुझे यह माल लेने दीजिये।"

"बाबू! अगर आप लेना चाहें तो ज़रूर ले लीजिये। मैं नहीं रोकूँगा।" वह वृद्ध उस तमेड़ को गुलामों से उठवाकर अपने गोदाम में ले गया। हम दोनों घर पहुँचे। उसने दस हज़ार, एक सौ दीनारें, एक लोहे की पेटी में रखकर मुझे दीं।

(अभी और है)

मित्र-भेद

संजीवक यों लगा सोचने
दमनक रहा नहीं जब पास—
'अच्छा होता दूर अगर मैं
रहता सुख से चरता घास।

मांसाहारी क्रूर शेर का
किया व्यर्थ ही मैंने साथ,
फिर भी भागूँगा न यहाँ से
मरूँ भले उसके ही साथ।'

यों निश्चय कर गया वहाँ वह
जहाँ कुपित बैठा था शेर,
संजीवक को लखते ही तो
हुआ और भी क्रोधित शेर।

दोनों के ही मन में भय था
शंका से थे वे बेहाल,
रहा घूरता क्षण-भर पिंगलक
कूदा फिर होकर विकराल।

संजीवक भी हटा न पीछे
भिड़ा लगाकर सारा ज़ोर,
यों संजीवक औ' पिंगलक में
होने लगा युद्ध अति घोर।

करटक बोला दमनक से तब
यों दोनों को लड़ते देख—
"व्यर्थ लड़ाकर इन दोनों को
रहे तमाशा तुम क्यों देख?

मित्र बने जो थे उनको अब
शत्रु बनाया तुमने हाय,
क्या होगा अब लाभ कि तुमने
सो ऐसा क्रूर उपाय?

पेट हमारे राजा का ही
अगर बैल यह डाले फाड़,
तो फिर बुरा नतीजा इसका
होगा कैसा कहो विचार!

श्री 'भारतीभक्त'

नहीं किसी का कहा मानते
करते रहते तुम उत्पात,
नाश, नाश ही सदा सोचते
नहीं भली कोई भी बात।

सुनते हैं उपदेश वही जो
होते सज्जन और सुपात्र,
भली कही बातों का उलटा
ही फल देता सदा अपात्र।

बहुत पुरानी कथा एक है
जाड़े की थी ठंडी रात,
एक पेड़ के नीचे बंदर
बैठे थे हो कंपितगात।

लाल घुमचियों के दाने थे
बिखरे भू पर ज्यों अंगार,
जिन्हें इकट्ठा कर वे बंदर
फूंक रहे थे बारम्बार।

सुलग उठेगी आग इसीसे
ऐसा था उन सबका ख़याल,
लेकिन लाख यत्न करने पर
भी निकली न ज़रा भी ज्वाल।

उसी पेड़ पर बैठा पंछी
देख रहा था सारा खेल,
रहा नहीं जब गया उसे तो
बोला—"बंद करो भी खेल!

ये तो घुमची के दाने हैं
नहीं आग के शोले सुर्ख़,
फूंक-फूंककर क्यों करते हो
निष्फल श्रम को, हो सब मूर्ख!"

पंछी की ये बातें सुनकर
बंदर बिगड़ उठे तत्काल,
पंख नोंचकर, गला दाबकर
दिया उसे झट भू पर डाल।

इसीलिए मैं कहता दमनक।
व्यर्थ रहा यों हूँ मैं चीख,
कहता एक कथा फिर भी मैं
काश, अगर तुम लेते सीख!

किसी नगर में धर्म-बुद्धि औ'
पाप-बुद्धि नामक थे मित्र,

अनुरूप नाम के गुण थे उनके
औ' थे दोनों बहुत दरिद्र।

एक दिवस को पाप-बुद्धि के
मन में जागा एक विचार,
धर्म-बुद्धि से कहा उसी क्षण—
"चलो, घूम आयें संसार।

देश देश को देखेंगे औ'
खूब कमायेंगे धन यार।"

धर्म-बुद्धि ने मान लिया यह
चले भ्रमण को दोनों साथ,
कई बरस के बाद एक दिन
लौटे भी वे दोनों साथ।

नगर-प्रवेश से पहले ही तब
पाप-बुद्धि बोला—"हे मीत,
धन तो साथ बहुत है लेकिन
बना बहुत ही हूँ भयभीत।

माँग माँगकर ले लेंगे सब
बहुत हमारे रिश्तेदार,
फिर तो कुछ भी नहीं बचेगा
हो जाएँगे हम बेकार।

इसलिए अच्छा तो यह है
थोड़ा ही धन साथ रखें हम,
औ' बाकी को यहीं कहीं पर
भू के नीचे गाड़ रखें हम।"

धर्म-बुद्धि ने स्वीकृति देकर
दिया वहीं पर धन को गाड़,

लेकिन पीछे पाप-बुद्धि ने
छिपकर सब कुछ लिया उखाड़।

बाद लगाया धर्म-बुद्धि पर
चोरी का उसने इल्ज़ाम,
लेकिन फूट गया जब भंडा
हुआ वही भारी बदनाम।

झूठी साक्षी के चक्कर में
जला उसीका अपना बाप,
अपनी ही करनी से वंचक
छला गया अपने ही आप!

आदर्श दाम्पत्य

किसी ज़माने में प्रयाग में एक व्यापारी रहा करता था। वह सम्पन्न तो था ही, सज्जन भी था। उसकी पत्नी हर तरह से उसके समान ही थी। उनका दाम्पत्य आदर्श दाम्पत्य था। उनके जीवन में एक ही कलंक था, और वह था उनका लड़का शशिकेतु।

शशिकेतु बड़ा दुष्ट था। वह बचपन से ऐसी बुरी सोहबत में पड़ा कि बिल्कुल बिगड़ गया। पिता ने बहुत समझाया, माता ने बहुत मनाया; पर वह न माना, न सुधरा। उसके कारण, उसके माता-पिता के लिए सिर उठाकर चलना मुश्किल हो गया।

व्यापारी का, नगर का पुजारी अच्छा मित्र था। इसलिए व्यापारी उससे अपने लड़के के बारे में कहता—"शशि की दुष्टता दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही है। कतई घट नहीं रही है। मैं इस आशा में था कि जैसे जैसे वह बड़ा होता जायेगा, वैसे वैसे सुधारता जायेगा, पर मुझे निराश होना पड़ा। उसके सुधार के लिए क्या किया जाय, आप ही बताइये। मेरी पत्नी उसके कारण सूखती जा रही है। अगर वह ठीक न हुआ, तो वह भी ज़िन्दा न रह सकेगी।" व्यापारी ने व्याकुल होकर कहा।

"सच पूछा जाये, तो तुम दोनों की अच्छाई के कारण ही वह इतना बिगड़ा है। तुम्हारे बल पर ही वह खुले सॉड की तरह घूमता-फिरता है। मेरी बात मान जाओ और उसे कहीं दूर देश भेज दो। वहाँ उसकी कोई सुनेगा नहीं। फ़िज़ूल खर्ची के लिए पास पैसा न होगा। उसे

श्री रामचन्द्र शर्मा

ज़रूर अपने आप, रोज़ी का कोई रास्ता ढूँढ़ना होगा। उसके सिर पर जिम्मेवारी आ पड़ेगी और फिर वह स्वयं ही बदल जायेगा। कामकाजी बन जायेगा और अच्छी राह पर आ जाएगा।" पुजारी ने व्यापारी से कहा।

व्यापारी को यह सलाह पसन्द आई। उसने अपने लड़के को बुलाकर कहा— "बेटा! मैं बड़ा सन्तुष्ट होऊँगा, यदि तुम दूर देश जाकर यश और धन कमाकर एक सज्जन व्यक्ति बन सके। बताओ, तुम कहाँ जाना चाहते हो?"

"मुझे काशी भेजिये।" शशिकेतु ने कहा। उसने सुन रखा था कि उस पुण्य क्षेत्र में महापापी मनमानी करते फिरते थे।

काशी में, पुजारी का कोई दूर का सम्बन्धी रहा करता था। पुजारी ने उसको एक चिट्ठी लिखकर, शशिकेतु के हाथ दी। वह उसे लेकर काशी के लिए निकल पड़ा।

ऐसा लगता था, जैसे पुजारी की सलाह सफल हो गई हो; क्योंकि काशी में उसका सम्बन्धी शशिकेतु के बारे में अच्छा ही लिखता। उन चिट्ठियों को ले जाकर पुजारी ने व्यापारी को सुनाया। व्यापारी

और उसकी पत्नी, अपने लड़के का आचरण सुधरता देख बड़े खुश हुए।

पर कुछ दिनों बाद, शशिकेतु के बारे में एक चिट्ठी आई। चिट्ठी क्या थी, बिजली की चोट थी। शशिकेतु का और शराबी जुआखोरों के साथ झगड़ा हो गया, और उन्होंने उसे मार दिया।

पुजारी जान गया कि शशिकेतु दूर जाकर भी न सुधरा था। पुजारी के लिए यह मुश्किल हो गया कि वह दुखद समाचार कैसे अपने मित्र व्यापारी के पास पहुँचाये। पर सत्य छुपाया भी नहीं जा सकता था। व्यापारी की पत्नी तो यूँही बीमार रहती थी। पुजारी ने आखिर, यह बात व्यापारी को एकान्त में कहनी चाही।

अपने लड़के की वार्ता सुनकर, व्यापारी को लकवा-सा मार गया। पर उसने आँसू न बहाये, न वह रोया ही। "मैं बहुत दिनों से सोचा करता था कि ऐसी घटना कभी न कभी घटेगी। आख़िर घटी भी। दूर जाकर सुधर जायेगा, हमने सोचा; पर वह न सुधरा। वह सुधरनेवाला भी न था।" दुःख भरी आवाज़ में उसने कहा।

फिर उसने पुजारी की ओर मुड़कर कहा—"खैर, आप यह मेरी पत्नी को न जानने दीजिये। वह तो यूँही खटिया पकड़े हुई है। अगर यह बात सुनेगी तो प्राण छोड़ देगी। वह अधिक दिन न जी सकेगी। उसे कम से कम इसी ख़्याल में मरने दीजिये कि उसका लड़का परदेश में है, और अच्छा है। आप पहिले की तरह कुछ चिठ्ठियाँ लेकर, मुझे और मेरी पत्नी को सुनाया कीजिये, जैसे आपके सम्बन्धी ने लिखी हों।"

"अच्छा, मैं यही करूँगा, आप दुःखी न हों! मैं उस गृहिणी को कोई दुःख न होने दूँगा।" पुजारी ने कहा।

वह महीने में एक चिट्ठी स्वयं लिखकर उनके पास जाता—"जी! काशी से एक और चिट्ठी आई है। आपके लड़के ने खबर भेजी है कि वह अच्छा है। मेरे रिश्तेदार ने यह भी लिखा है कि आपके लड़के को राजा के दरबार में नौकरी मिलनेवाली है।" पुजारी ने कहा।

फिर एक बार जाकर उसने बताया—"आपका लड़का, इस वैशाख पूर्णिमा से नौकरी में लग रहा है।"

एक बार उसने बताया—"राजा ने आपके लड़के को बहुत बड़ा इनाम दिया है। उन्होंने यह भी कहा है कि उसका विवाह भी वे ही करवायेंगे।"

एक बार उसने कहा—"आपके लड़के को आप दोनों को देखने की इच्छा हो रही है। कह रहा है कि छुट्टी मिलते ही आ जायेगा।"

जब कभी पुजारी आता, तो व्यापारी और उसकी पत्नी सानन्द उसका स्वागत करते। जो कुछ वह कहता, वे बड़े ध्यान से सुनते। यद्यपि व्यापारी की पत्नी रोगी थी, पर पुजारी को देखकर इस तरह उठती, जैसे रोग यकायक ठीक हो गया हो।

पुजारी मन ही मन सोचता कि वह उतनी अच्छी गृहिणी को धोखा दे रहा था। पर जब वह उसकी झूटी चिट्ठी सुनकर खुश होती, तो वह सोचता—"मैं अच्छा काम ही कर रहा हूँ। उस गृहिणी की खुशी से अधिक कौन-सी चीज़ है!"

इस तरह चार वर्ष बीत गये। व्यापारी की पत्नी की बीमारी धीमे धीमे बढ़ती गई। वह हिल भी न पाती थी। हमेशा खटिया पर पड़ी रहती। उसे क्षय था। वैद्यों ने कह दिया कि वह अधिक दिन जीवित न रह सकेगी।

एक दिन पुजारी के पास ख़बर आई कि व्यापारी की पत्नी की हालत, अब और तब की थी। पुजारी तुरत उनके घर गया। व्यापारी घर में न था।

"मैं जा रही हूँ, आप उनका ख़्याल रखना।" व्यापारी की पत्नी ने, पुजारी से कहा।

"यह क्या? आप भी क्या कह रही हैं? अपका लड़का, सुना है वापिस आ रहा है। यह अभी अभी मुझे मालूम हुआ है। काशी से कुछ यात्री आये हैं, उनके द्वारा मेरे सम्बन्धी ने ख़बर भिजवायी है। आप जल्दी ही अपने शशि से मिल सकेंगी।" पुजारी ने कहा।

रोगी ने दयनीय शक्ल बनाकर पुकारते हुए कहा—"यह बात बिल्कुल सच है, हम उस लोक में मिलेंगे। अचरज मत कीजिए। मैं बहुत दिनों से जानती हूँ कि शशि मर गया है। पर आपका काशी का सम्बन्धी बड़ा नेक आदमी है। हम उसका कर्ज़ नहीं चुका सकते। अगर उन्हें यह बात मालूम हो जाती तो, जाने उनकी हालत क्या होती? इतने दिन मैंने उनको यह बात नहीं बताई है। मेरे सामने आप शपथ लीजिये कि आप उन्हें यह नहीं बतायेंगे। नहीं तो मैं शान्तिपूर्वक न मर सकूँगी। जब तक वे जीवित हैं, उनको यह न पता लगे कि शशि मर गया है। यही मेरी इच्छा है।"

पुजारी को दुख न हुआ, बल्कि उसे बड़ा आनन्द हुआ। अगर आदर्श दाम्पत्य कहीं है; तो यहाँ है। वे एक दुखद समाचार को आजीवन अपने हृदय में रखे रहे; ताकि एक दूसरे को उसे सुनकर दुख न हो। उन दोनों की प्रशंसा करता हुआ पुजारी घर चला गया।

[हमने "भुवन-सुन्दरी" में पढ़ ही लिया कि कैसे ट्रोय नगर के राजा वर्धन का लड़का मोहन, ग्रीक राजा प्रताप की पत्नी, भुवन-सुन्दरी को उठा लाया था, और कैसे उसको वापिस ले आने के लिए ग्रीक सैनिकों ने जहाज़ों में आकर ट्रोय नगर का घेरा डाला था और कैसे काठ के घोड़े की सहायता से नगर में घुसकर, नगर को ध्वंस किया था। ट्रोय नगर पर हमला करनेवाले ग्रीक वीरों में रूपधर भी था। जब वह युद्ध के लिए जा रहा था तब यह भविष्यवाणी की गई थी कि वह बीस वर्ष तक स्वदेश वापिस न जायेगा। इन बीस वर्षों में से दस वर्ष ट्रोय नगर के युद्ध में ही बीत गये। अगले दस वर्षों में रूपधर को अनेक विचित्र अनुभव हुए। उन अनुभवों की कहानी ही हम अब यहाँ शुरू कर रहे हैं।]

रूपधर के जहाज़ों ने ट्रोय नगर को छोड़ा था कि प्रतिकूल हवा चलने लगी। जहाज़ों को जाना दक्षिण की ओर था और वे गये उत्तर की ओर। वे कुछ नहीं कर सके। कुछ दिनों बाद, वे इस्मरोस के पास पहुँचे। वहाँ पहुँचते ही वे नगर में घुस पड़े। इस नगर में किकोनियन रहा करते थे।

रूपधर की सेनाओं ने नगर पर हमला किया, और उसे खूब लूटा। सैनिकों ने नगर की स्त्री, पशु-सम्पत्ति आदि को आपस में बाँट लिया। "हमारा यहाँ से

[एक ग्रीक पुराण कथा]

जितनी जल्दी हो सके, चला जाना ही अच्छा है।"—रूपधर ने अपने सैनिकों से कहा। पर सैनिकों ने उसकी न सुनी। क्योंकि वे नशे में थे। शहर में उनको बहुत शराब मिल गई थी। वह शराब सब ने खूब पी, वे पशुओं को मारकर उन्हें भूनकर खाने की तैयारी में लग गये।

इस बीच में वे किकोनियन, जो नगर छोड़ कर भाग गये थे, आसपास के गाँवों में गये, और असंख्य योद्धाओं को साथ लेकर वापिस आये। इनमें कई योद्धा ऐसे थे, जो ज़रूरत पड़ने पर रथ में चढ़कर युद्ध कर सकते थे, अन्यथा भूमि पर खड़े खड़े ही शत्रु का सामना कर सकते थे।

ये किकोनियन योद्धाओं ने सवेरे ही रूपधर के सैनिकों पर हमला किया। दोनों पक्ष के बीच बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। किकोनियनों की संख्या अधिक थी। ज्यों ज्यों सूरज चढ़ता जाता था, ग्रीक सैनिकों की शक्ति भी कम होती जाती थी। हर जहाज़ के छः ग्रीक सैनिक मारे गये। बाकी सैनिक जान बचाकर अपने जहाज़ों में भाग गये। उनके लिए कोई दूसरा रास्ता न था।

वे समुद्र में कुछ दूर गये थे कि आन्धी-झंझा चलने लगी। भूमि की ओर से और समुद्र की तरफ़ से घने मेघ आकाश को घेरने लगे। फिर देखते देखते रात भी हो गई। इस भयंकर तूफ़ान में, पाल भर गये और जहाज़ वायु की गति के साथ बह गये। शीघ्र ही, पाल फटकर चीथड़े हो गये।

रूपधर डरने लगा कि कोई भी जीता जी न बचेगा। उसने सैनिकों से कहा कि

पाल उतार दिये जायँ, और चप्पुओं से खेकर, जहाज़ों को किनारे पर लगाया जाय। जहाज़ों के किनारे पर पहुँच जाने पर, दो-तीन दिन तक ग्रीक सैनिक हथेली में प्राण रखे, इस प्रतीक्षा में रहे कि कब तूफ़ान बन्द होता है। उन्हें सूर्य का प्रकाश तक न दिखाई दिया।

तीसरे दिन, जब पूर्व में उन्होंने सूर्योदय देखा तो उनकी जान में जान आई। उन्होंने मस्तूल उठाकर नये पाल लगाये। बिना बहुत मेहनत के जहाज़ हवा के साथ चल दिये।

चार दिन इस तरह सफ़र करने के बाद वे मलिया पहुँचे। इस द्वीप को पार करके, उत्तर की ओर जाने से, रूपधर का स्वदेश इथाका पड़ता था। हवा का ज़ोर ज़रा कम हो गया था। रूपधर ने अपने सैनिकों को आज्ञा दी कि जहाज़ द्वीप को पारकर आगे चलें। परन्तु ठीक उस समय फिर तूफ़ान आया। और तूफ़ान जहाज़ों को कहीं और ले गया।

नौ दिन, नौ रात, तूफ़ान ने रूपधर के जहाज़ों से गेंद खेली। कई तरह की मुसीबतें झेलने के बाद दसवें दिन कहीं किसी किनारे पर पहुँचे। पर रूपधर वहाँ अधिक समय तक न रह सका।

क्योंकि वहाँ के रहनेवाले ज्ञान फल खाते थे। वे खाने में स्वादिष्ट होते थे। उनमें न कोई गुठली होती थी, न कोई बीज ही। उनको खाने से आदमी को कोई गुज़री बात याद नहीं रहती थी। लोगों को ऐसा नशा आ जाता था, जैसे अफ़ीम खा ली हो।

परन्तु रूपधर यह न जानता था। उसने और उसके सैनिकों ने किनारे पर खाना पकाकर खाया। फिर रूपधर ने तीन

सैनिकों को बुलाकर कहा—"तुम लोग ज़रा घूम घाम कर देख कर आओ, यहाँ के रहनेवाले कैसे हैं?"

वहाँ के लोगों ने उन तीन ग्रीक सैनिकों का कुछ न बिगाड़ा, पर उन्हें भी उन्होंने वह फल दिया, जिसे वे स्वयं खा रहे थे। उन तीनों ने वे फल खाये। उसे खाते ही रूपधर के वे सैनिक अपना काम भूल गये और मज़ा उड़ाने लगे।

जब बहुत देर तक सैनिक वापिस न आये, तो रूपधर स्वयं कुछ सैनिकों को साथ लेकर गया। तब उसको सारी बात मालूम हुई। वहाँ के लोगों ने उसे भी फल खाने को दिया। पर रूपधर ने खाया नहीं। जिन सैनिकों ने उसे खाया था, उनको ज़ोर-जबर्दस्ती से जहाज़ तक ले जाना पड़ा। तब भी वे रूपधर से कह रहे थे—"हम तुम्हारे साथ नहीं आयेंगे, यहीं रहेंगे! हमें यहीं बहुत अच्छा लग रहा है।"

रूपधर ने उनको रस्सी से बँधवा दिया। उसने सोचा कि वहाँ एक क्षण रहना भी अक्लमन्दी का काम न था। उसने जहाज़ों को आगे ले जाने की आज्ञा दी। जहाज़

कुछ दिनों तक समुद्र में चलते रहे। एक दिन रात को वे अनजाने ही किनारे पर पहुँचे।

ग्रीक न जानते थे कि वे कैसी जगह पर पहुँचे थे। क्योंकि आकाश में चाँद था, पर उसको बादलों ने बुरी तरह घेर रखा था। यही नहीं, कोहरा इतना घना था कि वे जान न पाते थे कि आगे क्या है। बाद में सब कुछ जाना जा सकता है, यह निश्चय कर, ग्रीक सैनिकों ने मस्तूलों पर से पाल उतार दिये। जहाज़ों पर से उतर आये और सब के सब रेत पर थोड़े बेफ़िकर सो गये। थकान की गहरी नींद थी।

वे सवेरे उठे। वह जगह द्वीप जैसी थी। वे इधर उधर घूमे। वहाँ के प्रकृति-सौन्दर्य को देखकर वे बहुत खुश हुए। उस द्वीप में कितने ही तरह के फलों के वृक्ष थे। कितनी ही अंगूरों की बेलें थीं। ज़मीन अच्छी थी और उपजाऊ भी। पर वहाँ खेती न होती थी। पानी की भी कमी न थी। इसलिए बिना खेती के ही वहाँ तरह तरह का अनाज आसानी से पैदा किया जा सकता था।

ग्रीक जहाज़ छोड़कर बहुत दूर न गये थे कि उनको जंगली बकरियाँ दिखाई थीं। वे तुरत जहाज़ों की ओर भागे, और अपने धनुष-बाण, भाले वग़ैरह ले आये। उनकी मदद से उन्होंने कई बकरियाँ मारीं और उन्हें आग में भूनकर दिन भर खाते रहे। रूपधर के पास बारह जहाज़ थे। और हरेक जहाज़ के हिसाब में नौ नौ बकरियाँ पड़ीं।

उस दिन वे जहाज़ छोड़कर न गये। पर कहीं दूरी पर कुछ ऐसे चिन्ह दिखाई दिये, जिनसे यह अन्दाज़ लगाया जा सकता था कि वहाँ मनुष्य रहते थे। शाम को उन्हें कहीं कहीं रसोई घर का धुआँ भी दिखाई दिया। भेड़ बकरी की आवाज़ भी उन्हें सुनाई दी।

रूपधर ने सवेरा होते ही अपने सैनिकों को बुलाकर कहा—"मैं अपनी नौका इस तरफ़ ले जाकर देखूँगा कि इस द्वीप में रहनेवाले लोग सभ्य हैं कि नहीं, उनका कोई समाज है कि नहीं। मेरे वापिस आने तक बाकी लोग और बाकी जहाज़ यहीं रहें। कहीं जाना नहीं।"

रूपधर के नौका के थोड़ी दूर जाने पर एक ऊँचे टीले पर एक गुफ़ा दिखाई दी। उसके ऊपर बेलें थीं। उसमें चारों ओर चारदिवारी-सी बनी हुई थी। उसमें बड़े बड़े पत्थर, और पेड़ों के तने रख दिये गये थे।

रूपधर ने अपनी नौका को ठीक गुफ़ा के सामने खड़ा किया। अपने सैनिकों में से बारह बहादुर सैनिकों को लेकर, बकरी के चमड़े के थैले में शराब लेकर वह गुफ़ा की ओर चल पड़ा।

वह शराब अजीब थी। इस्मरोस पर जब उसने हमला किया था, तब उसने एक

पुजारी, और उसकी पत्नी, बाल-बच्चों को न मारा था; छोड़ दिया था। उसके बदले में उस पुजारी ने बकरी के चमड़े के थैलों में शराब भरकर उसको भेंट दी। सोना चाँदी भी दी। वह पुजारी इस शराब को, बीस गुने पानी में मिलाकर पिया करता था। तब भी उसकी सुगन्ध और मिठास खूब बनी रहती।

रूपधर और उसके सैनिक जल्दी ही गुफ़ा में पहुँचे। परन्तु गुफ़ा में कोई न था। वह बहुत बड़ी गुफ़ा थी। उसमें, कई बाड़े थे, जिनमें उम्र के अनुसार भेड़ और बकरियाँ बँधी हुई थीं। एक तरफ़ दूध की मलाई बिछी हुई थी। कितने ही घड़ों में दूध भरा था।

"इस मलाई को लेकर, आओ, हम अपने रास्ते पर चले जायें।" रूपधर के सैनिकों ने कहा।

"हमें यहाँ कोई रोकनेवाला नहीं है, आओ, हम इन सभी भेड़-बकरियों को भी साथ ले जायें।" कई और सैनिकों ने कहा।

पर रूपधर ने उनको यह सब करने की अनुमति देने से इनकार कर दिया था। सब ने पेट भरके मलाई वग़ैरह खाई। फिर वे उस गुफ़ा में रहनेवाले आदमी की प्रतीक्षा करते बैठे रहे।
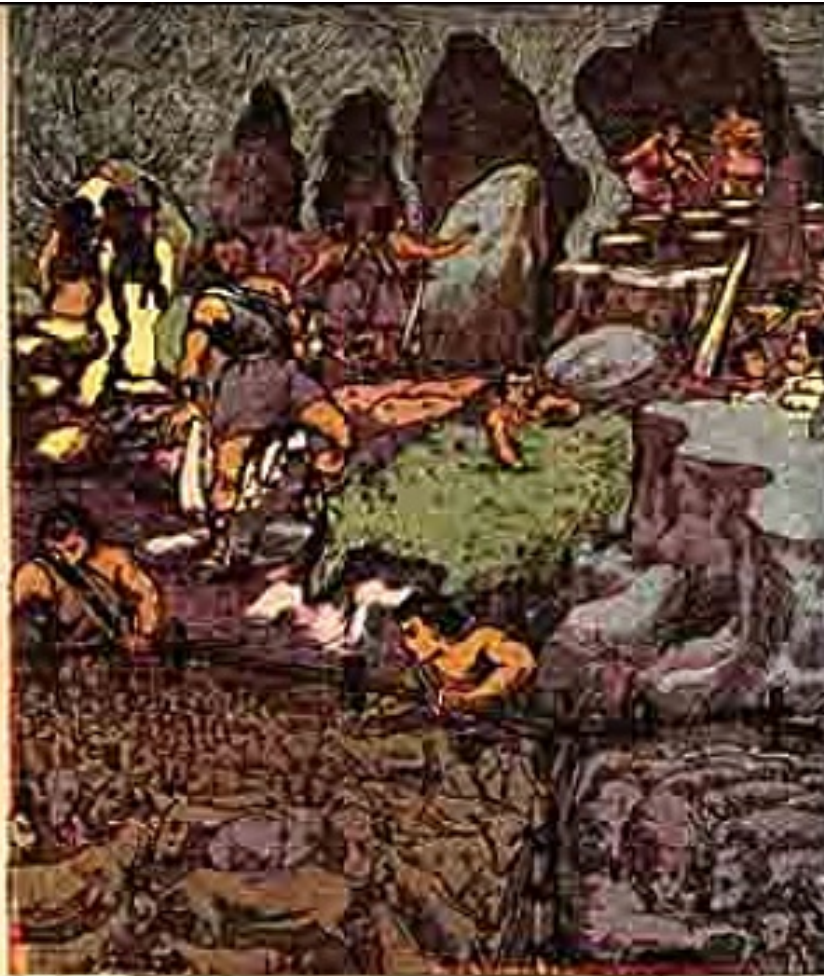
आख़िर वह आदमी आया। पहिले तो ग्रीक सैनिकों ने उसे न देखा। घोर गर्जन करती हुई-सी कोई चीज़ आई। उसके थोड़ी देर बाद असली आदमी ने झुककर गुफ़ा में प्रवेश किया। उसे देखकर ग्रीक सैनिक इस तरह भागे, जिस तरह कि बिल्ली को देखकर चूहे इधर उधर भागते हैं।

वह मनुष्य ताड़ के पेड़ के बराबर ऊँचा था। उसकी एक ही आँख थी।

उस आदमी ने एक बड़े भेड़ के झुण्ड को अन्दर हाँका। भेड़ खूब मुटियायी हुई थीं। फिर उसने एक बड़े पत्थर को उठाकर गुफ़ा के दरवाज़े को बन्द किया। वह पत्थर इतना बड़ा था कि बीस जोड़ी बैल भी उसे न हिला सकते थे। फिर उसने बकरियों का दूध दुहा।

वह आदमी भाललोचन जाति का था। उस जाति के कई लोग वहाँ थे। वे समाज में नहीं रहते। वे अलग अलग एक एक गुफ़ा में रहते हैं। एक को दूसरे की फ़िक्र नहीं होती।

इस जातिवाले खेती नहीं करते। क्योंकि जमीन बहुत उपजाऊ थी, इसलिए बिना खेती के बार्ली जैसे कई अनाज़ पैदा हो जाते थे। ये राक्षस साल में एक बार फ़सल काट लेते हैं। नहीं तो, वे दिन भर भेड़ बकरियाँ चराते रहते हैं। अच्छी घास खाकर ये भी ख़ूब मोटी हो जाती हैं।

ये राक्षस यद्यपि पीढ़ी दर पीढ़ी समुद्र के किनारे रहते आये हैं, तो भी न उनको नाव बनानी आती है न जहाज़ ही। उनको सभ्यता छू तक नहीं गई है। वे निरा असभ्य और बर्बर जीवन व्यतीत करते हैं।

गुफ़ा में भाललोचन ने आधा दूध लेकर जमा दिया और बाकी शायद पीने के लिए उसने एक घड़े में डाल दिया। फिर उसने आग जलाई। आग के प्रकाश में उसे ग्रीक दिखाई दिये।

राक्षस ने अपनी आँख को इधर उधर घुमाकर पूछा—"कौन हो तुम!" उसकी आवाज़ से सारी गुफ़ा गूँज उठी।

(अभी और है)

अन्धा न्याय

बग़दाद शहर में तीन अन्धे भिखारी मिलकर रहा करते थे। वे रोज़ भीख माँगते, खाने-पीने के बाद जो पैसे बचते, उन्हें अपने घर में सुरक्षित रखते। इस तरह उनके पास बारह सौ दिरमें जमा हो गईं।

एक दिन उनमें से एक ने, एक गली में घुसकर, एक घर का दरवाज़ा खटखटाया।

अन्दर से घर के मालिक ने कहा—"कौन है?" परन्तु अन्धे ने कुछ न कहा। फिर उसने दरवाज़ा खटखटाया। वह जानता था कि अगर वह कहेगा कि वह भिखारी है तो घरवाले बिना दरवाज़ा खोले ही कह देंगे—"जाओ, कुछ नहीं है।"

घर के मालिक ने फिर पूछा—"कौन है?" और जब कोई जवाब न मिला तो उसने दरवाज़ा खोला। एक अन्धे को देखकर पूछा—"कौन हो? तुम!"

"....अन्धा हूँ, बाबू, दया कीजिये।" भिखारी ने कहा।

तुरत घर के मालिक ने उसे अपना हाथ बढ़ाकर कहा—"मेरा हाथ पकड़ कर अन्दर आओ।" भिखारी ने सोचा कि उसका भाग जग गया था। वह उसके साथ मकान की तीसरी मंज़िल तक गया।

"यहाँ बैठकर तुम यह बताओ कि तुम्हें क्या चाहिये।" घर के मालिक ने कहा।

"मैं भूख से मरा जा रहा हूँ। या तो थोड़ा भोजन दीजिए; नहीं तो दो-चार पैसे।" भिखारी ने कहा।

"तो यह बात है! यहाँ कुछ नहीं है। जाओ।" घर के मालिक ने कहा।

"....क्या इसीलिये आप मुझे इतनी सीढ़ियाँ चढ़ाकर लाये थे! यह अगर नीचे ही कह देते तो!" भिखारी ने पूछा।

श्री विनोद कुमार

"....जब पूछा था "कौन?" तो क्यों नहीं ठीक जवाब दिया था?" घर के मालिक ने पूछा।

"....तो आप चाहते क्या हैं?" भिखारी ने पूछा।

"यही कि तुम्हें देने के लिए मेरे पास कुछ नहीं है।" घर के मालिक ने कहा।

"यह बात है तो मुझे नीचे तक पहुँचाइये।" भिखारी ने कहा।

"क्या मेरा यही काम है? जा जा।" घर के मालिक ने डाँट कर कहा।

भिखारी ने लम्बी साँस छोड़ी। इधर उधर खोजता सीढ़ियों के पास गया। जब वह नीचे उतर रहा था तो उसका पैर फिसल गया। चोट लगी। वह जैसे तैसे, कराहता, गली में चला गया।

ठीक उसी समय, बाकी अन्धे भिखारी भी उसी गली में आये। उसको कराहता सुन उसके पास जाकर उन्होंने पूछा—"क्यों! क्या बात है?"

उसने अपनी कहानी बाकी दो मित्रों को सुनाई और कहा—"आज तो मैं घूम-फिर नहीं सकता। अगर तुम्हारे

पास कुछ पैसे हों तो दो, मैं कुछ खा-पी लूँगा।"

"आज तो हमारे भाग्य भी ख़राब हैं, कुछ नहीं मिला। आओ, घर चलें।" दोनों अन्धों ने कहा।

इन भिखारियों की बातचीत घर के मालिक ने सुनी। वह एक बड़ा चोर था। वह भी उस भिखारी के पीछे पीछे चलने लगा, जो उसके घर आया था। उनकी सब बातें सुनीं। और उनके साथ उनके घर भी गया। जल्दी ही भिखारी अपने घर पहुँचे। ताला खोलकर अन्दर गये, और झट फिर दरवाज़ा बन्द कर दिया। परन्तु इस बीच चोर भी अन्दर घुस गया।

अन्धों ने सन्दूक खोल कर अपनी सारी सम्पत्ति की जाँच-पड़ताल की। बारह सौ चान्दी के दिरमें थीं। उसमें से एक लेकर एक अन्धा, रोटी-साग खरीद लाया। तीनों बैठकर खाने लगे। उनके साथ चोर भी खाने लगा।

"चार आदमियों का चबाना सुनाई पड़ रहा है।" एक अन्धे ने कहा। तुरत वे तीनों चोर पर लपके और उसको मारते-पीटते चिल्लाये—"चोर, चोर।"

जब चिल्लाना सुनकर पाँच-दस आदमी इकट्ठे हो गये तो चोर भी आँखें मूँदकर इस तरह बैठ गया, जैसे वह भी एक अन्धा हो और कहने लगा—"भाई, हमें कोतवाल के पास ले जाइये। उन्हें एक ज़रूरी बात बतानी है।"

तुरत लोग चारों अन्धों को कोतवाल के पास ले गये। "कौन हैं ये? यहाँ क्यों आये हैं?" कोतवाल ने पूछा।

"बाबू! हम तीनों अन्धे भिखारी हैं। कोई चोर हमारे घर में घुसकर हमारी पसीने की कमाई को चुराने की सोच रहा है।" एक अन्धे ने कहा।

"वह चोर कौन है? सच बोलो।" कोतवाल ने पूछा।

"बिना कोड़े की मार के क्या चोर सच बतायेंगे, बाबू?" आँखें मूँदे हुए चोर ने कहा—"यही बात है तो जब तक यह सच न बताये इसे कोड़े मारो।" कोतवाल ने कहा।

अभी दो कोड़े भी न लगे थे कि चोर ने आँख खोलकर कहा—"हमें माफ़ कीजिये, हुज़ुर! मैं सच कह दूँगा। हमने अन्धे होने का बहाना कर, शहर भर में घूम घूम कर, बारह सौ दिरमें भीख में पाईं। क्योंकि मैंने सच कह दिया है, इसलिये मेरा हिस्सा मुझे दिलवा दीजिये। इन्हें भी कोड़े लगवाइये, ये सच कह देंगे।"

कोतवाल ने उसकी बात का विश्वास कर लिया और उसको तीन सौ दिरमें देकर भेज दिया। फिर उसने उन अन्धों को खूब पिटवाया। पर उन्होंने अपनी आँखें न खोलीं। जब वे बेहोश होकर गिर गये तो कोतवाल ने उन्हें छोड़ दिया और उनका बहुत दिनों से जमा किया हुआ धन उसने स्वयं हथिया लिया।

चंदा, तुम धरती पर आओ!

श्री कपिल

चंदा, तुम धरती पर आओ!

मीठे-मीठे गीत सुना कर,
निंदिया मेरे पास बुलाओ!
चंदा, तुम धरती पर आओ!

निंदिया मेरे पास बुलाकर,
बादल के रथ में बिठलाकर,
अपने साथ मुझे ले जाकर–

मन को मोहित करने वाला,
सपनों का संसार दिखाओ!
चंदा, तुम धरती पर आओ!

दूर गगन में चम-चम करते,
दुनिया वालों का मन हरते,
उर में खुशी असीमित भरते–

नयनों के मोती से उज्वल
तारों के संग बात कराओ!
चंदा, तुम धरती पर आओ!

शीतल करतीं जो हर तन को
शीतल करतीं जो हर मन को,
शीतल करतीं जो कण-कण को–

उन शीतल किरणों को पल भर,
मेरे ऊपर भी बरसाओ!
चंदा, तुम धरती पर आओ!

सारे नभ की सैर कराओ,
दूध मलाई मुझे खिलाओ,
अमृत का भी घूंट पिलाओ–

फिर मुझको वापस पहुँचा कर,
तुम भी अपने घर को जाओ!
चंदा, तुम धरती पर आओ!

पाप-विमोचन

कुमार नगर में विष्णुभूति नाम का ब्राह्मण रहा करता था। उसके एक लड़का था, जिसका नाम देवभूति था। उसने छुटपन में ही चार वेद और छः शास्त्र पढ़े थे। परन्तु क्यों कि उसने बहुत पाप किये थे, इसलिये वह ब्रह्मराक्षस हो गया।

ब्रह्मराक्षस होने के बाद देवभूति को ज्ञान-प्राप्ति हुई। पाप से विमुक्त होने के लिए उसने किसी अच्छे व्यक्ति को विद्यादान करना चाहा। इसलिए वह जंगल में एक पीपल के पेड़ पर रहने लगा और रोज़ वेद-पारायण करने लगा।

यद्यपि वह पंडित था, पर चूँकि वह ब्रह्मराक्षस हो गया था, इसलिये उसमें ब्रह्मराक्षस के भी लक्षण थे। जो जन्तु-जानवर उस पेड़ के नीचे आते, वह उन्हें मारकर खा जाता। अगर कोई मनुष्य भटका भटका आता, तो उनकी विद्या की परीक्षा करता। वे डर कर भाग जाते। आसपास के लोगों को पता लग गया कि उस वृक्ष पर एक ब्रह्मराक्षस रहा करता था।

देवभूति के राक्षस हो जाने के कुछ दिनों बाद, कुमार नगर में एक युवक आया। उसका नाम था गोनर्दीय। वह काशी का रहने वाला था। उसने काशी में सकल शास्त्रों का अध्ययन किया था और वह नई विद्याओं को सीखने के लिए निकला था। कुमार नगर के पंडितों ने उसकी परीक्षा कर के कहा—"भाई, हम तुमसे बड़े पंडित नहीं हैं। इस नगर में तुम्हें कोई नई विद्या नहीं सिखा सकता। फिर भी ब्रह्मराक्षस के रूप में, एक व्यक्ति जंगल में एक पेड़ पर निवास कर रहा है। शायद वह तुम्हारी मदद कर सके।"

श्री आर. एस. माथुर

"तब मैं वहाँ ही जाऊँगा।" गोनर्दीय ने कहा।

"अरे, फ़िज़ूल मारे जाओगे। क्या तुम अब कम जानते हो?" पंडितों ने कहा।

परन्तु गोनर्दीय ने उनकी एक न सुनी, वह जंगल की ओर चल पड़ा। वह उस घने जंगल में कई दिनों तक भटकता रहा। एक दिन उसे दूरी पर वेद-पठन सुनाई दिया। गोनर्दीय समीप गया। पीपल के पेड़ को देखकर वह बड़ा प्रसन्न हुआ। उसके नीचे बैठकर, वह भी राक्षस के साथ पठन करने लगा।

ब्रह्मराक्षस ने तुरत गोनर्दीय के सामने कूदकर पूछा—"कौन हो तुम? तुम्हें मेरे साथ वेद पढ़ने का साहस?"

"क्षमा कीजिये। मैं आपकी बराबरी नहीं कर रहा हूँ। आपके पास नये शास्त्रों को जानने के लिए आया हूँ। मेरा नाम गोनर्दीय है। मैं काशी का रहने वाला हूँ।" गोनर्दीय ने सविनय कहा।

ब्रह्मराक्षस बड़ा खुश हुआ। "यह बात है भाई! पर मैं कई दिनों से इस प्रतीक्षा में था कि कोई ऐसा व्यक्ति मेरे पास आये जिसे मैं विद्या दान कर सकूँ और मैं अपने पापों से विमुक्त हो सकूँ। तुम क्या क्या जानते हो? यह बताओ।" ब्रह्मराक्षस ने पूछा।

गोनर्दीय ने वे सब विद्यायें बताईं, जिन्हें वह जानता था। "मैं ऐसी कोई विद्या नहीं जानता, जो तुम न जानते हो! क्या किया जाये?" ब्रह्मराक्षस ने कहा।

गोनर्दीय भी बड़ा निराश हुआ। पर इतने में ब्रह्मराक्षस ने कहा—"देखो भाई, मैं तुम्हे कन्यादान देता हूँ। तुमसे अधिक योग्य ब्रह्मचारी कहीं न मिलेगा। जो मैं कहूँगा वह करोगे?" ब्रह्मराक्षस ने पूछा, और गोनर्दीय तुरत मान गया।

"वहाँ से दक्षिण की ओर जाओ। जयपुर नाम का नगर आयेगा। वहाँ के राजा के एक लड़की है, जिसका नाम मदयन्ती है। वह सुन्दर है, विदुषी है। उसका पिता उसके विवाह के लिए प्रयत्न कर रहा है। मैं उसे जाकर पकड़ूँगा.... तुम्हारे आते ही मैं उसे छोड़ दूँगा। तब राजा, तुम्हारे साथ उसका विवाह कर देगा और मैं पाप से विमुक्त हो जाऊँगा।" ब्रह्मराक्षस ने कहा।

इधर जयपुर में, राजा ने कई राजकुमारों के चित्र मँगवाये, ताकि मदयन्ती अपना पति चुन सके। उनको मदयन्ती के पास भेज दिया। ठीक उसी समय, ब्रह्मराक्षस ने मदयन्ती में प्रवेश किया। वह दासियों को उठाकर फेंकने लगी, और बड़ा अट्टहास करने लगी।

देखते देखते राजमहल में कुहराम मच गया। जो सैनिक मदयन्ती को पकड़ने गये, उसने उनको एक मुक्के में समाप्त कर दिया। भोजन भी दूर फेंक दिया।

राजा ने नगर के भूत वैद्यों को बुलवाया। उन्होंने मन्त्र पढ़े। तन्त्र किये। भस्म फेंका, पर वे मदयन्ती के पास न जा

सके। जिन्होंने पास जाने का साहस किया भी, या तो उनके सिर फूट गये, नहीं तो टाँगें तोड़ दी गईं।

बिचारा राजा पागल-सा हो गया। उसके एक ही लड़की थी। इकलौती। शादी करने की तैयारियाँ हो रही थीं कि उसे भूत चढ़ गया। अगर यह बात देश विदेश में फैल गई तो उससे कोई शादी न करेगा।

"राजकुमारी मदयन्ती का भूत जो उतार देगा, उसके साथ न केवल उसका विवाह ही होगा, अपितु उसका पट्टाभिषेक भी किया जायेगा।" राजा ने सर्वत्र यह घोषणा करवाई।

यह घोषणा सुन दूर देश से भूत वैद्य आये। पर राजकुमारी के हाथ वे खूब पिटे। वे कुछ न कर सके।

इस बीच, गोनर्दीय जयपुर पहुँचा। राजकुमारी की स्थिति के बारे में मालूम कर उसने राजा से कहा—"महाराजा! मैं उस भूत को छुड़ा सकता हूँ, जो आपकी लड़की को इस समय तंग कर रहा है।"

उस नवयुवक को देखकर, राजा को दया आई। उसने कहा—"नहीं भाई!

यह काम तो बड़े बड़े मान्त्रिक नहीं कर पाये हैं। तुम बच्चे हो। यह काम तुम्हारे बस का नहीं है।"

गोनर्दीय ने हँसकर कहा—"महाराज! जो भूत मेरे आने पर न जाये, क्या उसे और भगा सकते हैं! राजा को उस युवक पर एतबार हो गया। उसने सैनिकों के साथ, उसको राजकुमारी के पास भेज दिया।

एक कमरे में, राजकुमारी बाल फैलाये, भयंकर शक्ल बनाये खड़ी थी। उसने गोनर्दीय को देखकर गर्जन किया।

तुरत गोनर्दीय ने हाथ जोड़कर यों पढ़ना शुरू किया।

भूतेन्द्र तव शिष्योऽहं गोनर्दीयाभिदानकः
पूर्वोदित वरं देहि, देवभूते नमो नमः

(भूत राजा! मैं तुम्हारा शिष्य हूँ। मेरा नाम गोनर्दीय है। पहिले बताया हुआ वर दो। देवभूति को मेरे नमस्कार।)

गोनर्दीय का यह कहना था कि मदयन्ती के मुँह से भयँकरता इस प्रकार चली गई, जैसे किसी ने उसको पोंछ दिया हो। वह बेहोश होकर, वहीं गिर गई।

गोनर्दीय की आज्ञा पर, सैनिकों और दासियों ने मदयन्ती को एक पलंग पर लिटा दिया। उसकी सेवा-शुश्रूषा करने लगे। वह फिर धीमे धीमे भोजन करने लगी और दो सप्ताहों में बिल्कुल ठीक हो गई।

राजा ने अपनी घोषणा के अनुसार गोनर्दीय का मदयन्ती के साथ विवाह कर दिया। उसका बाद में पट्टाभिषेक भी हुआ।

फिर किसी ने, जंगल में, पीपल के पेड़ के पास वेद पठन न सुना। देवभूति पाप से विमुक्त हो गया और उसका इस तरह ब्रह्मराक्षस का रूप भी समाप्त हो गया।

फ़ोटो - परिचयोक्ति - प्रतियोगिता

अक्तूबर १९५७ :: पारितोषिक १०)

कृपया परिचयोक्तियाँ कार्ड पर ही भेजें।

ऊपर के फ़ोटो के लिए उपयुक्त परिचयोक्तियाँ चाहिए। परिचयोक्तियाँ दो-तीन शब्द की हों और परस्पर संबन्धित हों। परिचयोक्तियाँ पूरे नाम और पते के साथ कार्ड पर ही लिख कर निम्नलिखित पते पर ता. ५, अगस्त '५७ के अन्दर भेजनी चाहिये।

फ़ोटो - परिचयोक्ति - प्रतियोगिता
चन्दामामा प्रकाशन
वडपलनी :: मद्रास - २६

अगस्त – प्रतियोगिता – फल

अगस्त के फ़ोटो के लिये निम्नलिखित परिचयोक्तियाँ चुनी गई हैं। इनके प्रेषक को १० रु. का पुरस्कार मिलेगा।

पहिला फ़ोटो:
'सुन सुन मुन्ना मेरी बात!'

दूसरा फ़ोटो:
'चल चल यार मेरे साथ!!'

प्रेषक: श्री ओम प्रकाश, C/o श्री गणेशस्टोर, धनबाद

साँप

साँप भी सरीसृप हैं। संसार में दो हज़ार से अधिक प्रकार के साँप हैं। इनमें कई बहुत छोटे होते हैं, और कई तीस चालीस फीट बड़े भी होते हैं।

सब साँप पेट के बल चलते हैं। किसी भी साँप के पैर नहीं होते उनके नीचे के भाग की माँसपेशियाँ द्वारा ही वे ज़मीन को पकड़ कर चलते हैं चिकनी भूमि पर वे नहीं चल सकते। वे खुरदरी जगह पर ही तेज़ी से भाग सकते हैं। कई तरह के साँप तैर भी सकते हैं। कई पेड़ पर भी चढ़ सकते हैं। कई साँपों के शरीर पर केंचुली होती है। कई के शरीर पर रंग-बिरंगे धब्बे होते हैं।

उनके दाँत होते हैं, पर साँप इनका चबाने के लिए उपयोग नहीं करते। साँप अपने आहार को बिना चबाये ही निगल जाते हैं। साँपों के दाँत अन्दर की ओर झुके हुए होते हैं। विष सर्प के दाँत कुछ खोखले होते हैं और उनमें विष होता है। जिनको वे काटते हैं, उनमें उनका विष चढ़ जाता है और वे मर जाते हैं।
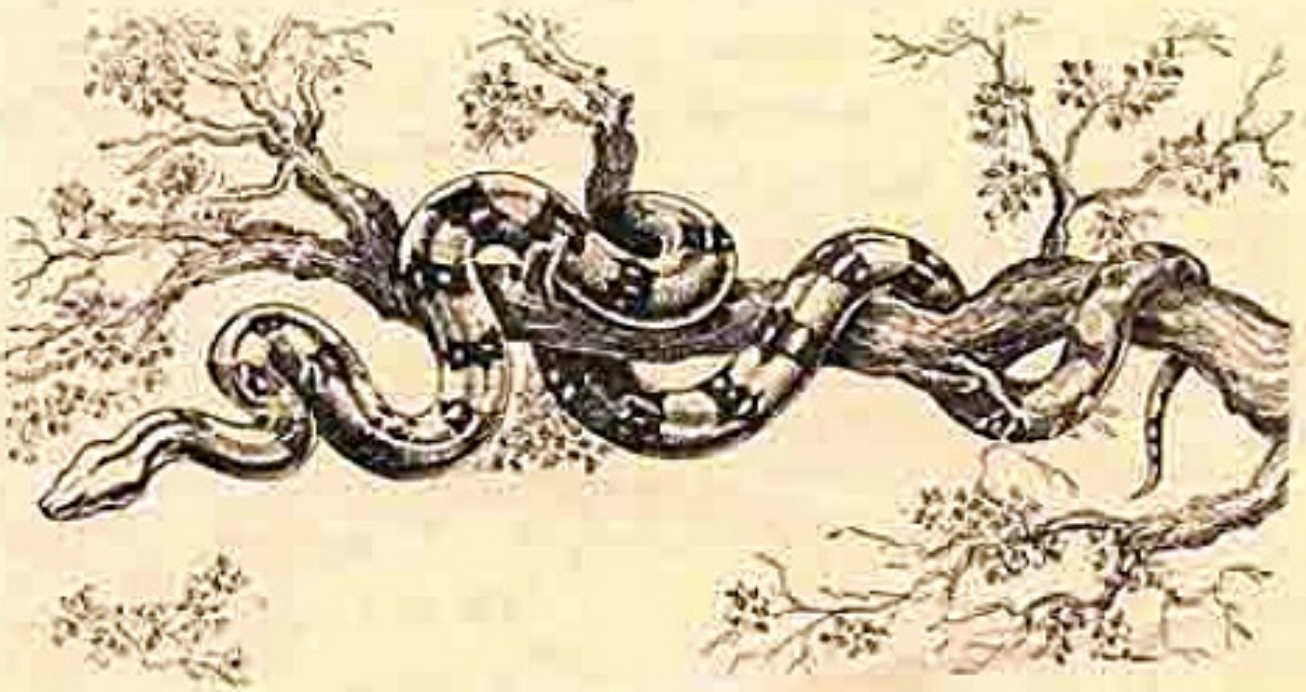
सब साँप दाँतों से नहीं मारते। कई जैसे अजगर, अपने शरीर से दूसरे पशुओं को लपेट लेते हैं, और उनको दबाकर मार देते हैं।

साँप का आहार और उसको पाने के तरीके विचित्र होते हैं। एक साँप, २४ घंटों में चार भेड़ के मेमनों को निगल गया। एक और साँप डेढ़ घंटे में ९३ पाउण्ड वाली बकरी साफ़ कर गया। साधारणतया इतनी खुराक खानेवालों में विष नहीं होता। कुछ साँप दूसरे साँपों को निगल जाते हैं। एक "ज़ू" में एक साँप, अपने से कुछ छोटे साँप को खा गया। साँप अठारह महीने बिना भोजन के भी रह सकते हैं। परन्तु बिना पानी के नहीं रह सकते।

साँप बहुत दिनों तक बढ़ते हैं। इसलिए वे साल में पाँच छः बार केंचुलियाँ छोड़ते हैं। केंचुली छोड़ना साँप के लिए आसान काम नहीं है।

अफ़्रीका में कुछ साँप ऐसे हैं, जो दूरी से ही अपने मुख से, दूसरे पशुओं की आँखों में विष फेंकते हैं। इससे आँखें फूट जाती हैं।

मनुष्य अनादि काल से साँप को अपना शत्रु समझता आया है। पर कई ऐसे साँप हैं जो मनुष्य का अपकार नहीं करते, बल्कि उपकार भी करते हैं। ये खेतों में, चूहे आदि को खा लेते हैं।
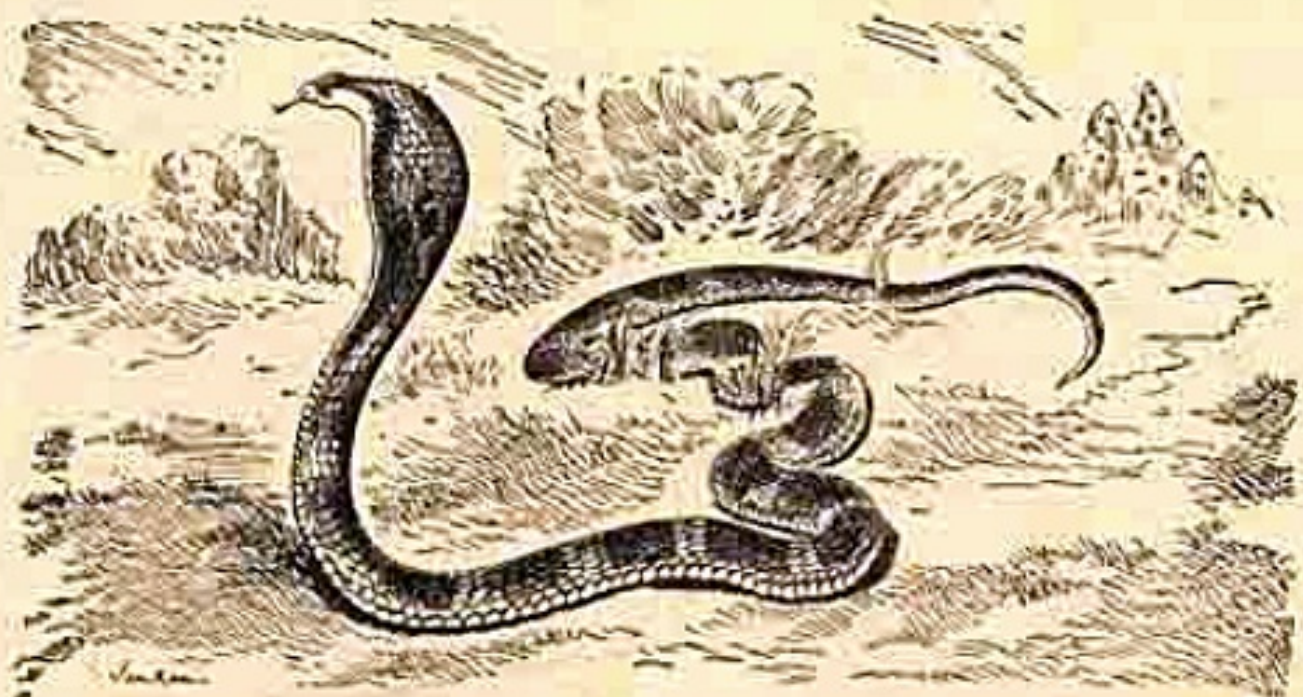
समाचार वगैरह

प्रधान मंत्री श्री नेहरू ने प्रशासन में मितव्ययता के लिए तथा तड़क-भड़क की कड़ी के लिए जो अभियान चलाया, उसे गृहमंत्रालय कार्यान्वित कर रहा है और इस सम्बन्ध में अन्य केन्द्रीय मंत्रालयों तथा राज्य सरकारों को अनेक सुझाव भी दिये जा चुके हैं।

* * *

विश्व में सबसे बड़ी उम्र का व्यक्ति सोवियत संघ के इगोर कोरोइव का, उसके गाँव इरमानी में देहान्त हो गया। मृत्यु के समय इस व्यक्ति की आयु १५७ वर्ष की थी।

भारत सरकार भोपाल से चार मील दूर बिजली की भारी मशीनें बनाने का जो कारखाना खोल रही है, उस के पास इंजनीयरों के लिए प्रशिक्षण स्कूल तथा वर्क शाप का शिलान्यास अभी हाल ही में किया गया।

* * *

प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू की डेनमार्क की यात्रा के समय वहाँ के पुलिस इन्सपेक्टर आर. सोएल्मार्क उनके अंगरक्षक थे। उनके कार्य से प्रसन्न होकर श्री नेहरू ने उन्हें चन्दन की एक लकड़ी भेंट में दी।
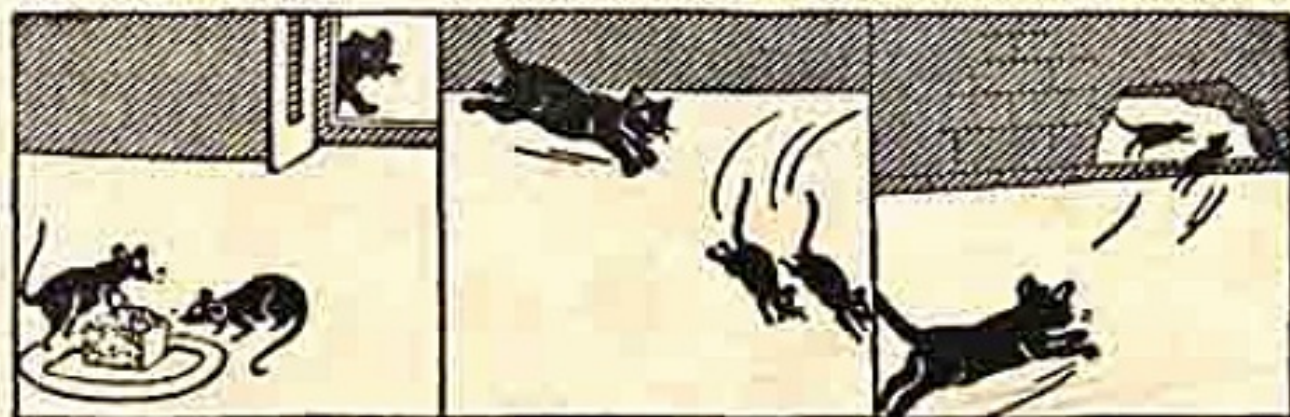
बम्बई के छात्रों ने नगर में १९५७ के प्रथम भारतीय स्वाधीनता संग्राम का एक स्मारक निर्मित करने के लिए बम्बई के शिक्षा मंत्री श्री हेमेन्द्र देसाई से परामर्श करने के बाद उस कार्य के लिए १५ सदस्यों की एक समिति नियुक्त की है।

* * *

टेलीफ़ोन विशेषज्ञ इंजीनियर भविष्य में ऐसी पद्धति के विकास का प्रयत्न कर रहे हैं, जिसके द्वारा, आप जब जी चाहें, अपने इष्ट-जन को, चाहे वह विश्व के किसी भी भाग में हो, देख तथा सुन सकते हैं।

* * *

हाल ही में पेकिंग में एक चीनी कम्पनी द्वारा 'शकुन्तला' नाटक रंगमंच पर खेला गया, जो चीनी युवक आर्ट थियेटर द्वारा पुस्तुत किया गया था।

केन्द्रीय सूचना मंत्रालय द्वारा महात्मा गांधीजी की रचनाओं के संकलन के लिए जो समिति नियुक्त की गई थी, उसकी ओर से प्रथम ग्रन्थ २ अक्तूबर '५७ को निकलेगा। इस संकलन के प्रधान सम्पादक डा० भरतन कुमारप्पा थे।

* * *

पिछले दिनों—भापा नाम के एक ७० वर्ष के ग्रामीण ने एक वसीयत लिख दी, जिसमें उसने लगभग ५० हज़ार रुपये मूल्य की सारी सम्पत्ति प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू के नाम कर दी।

* * *

मास्को में इस वर्ष ता० २१ जुलाई से ११ अगस्त तक सम्पन्न होनेवाले छठवें युवक और छात्र विश्व महोत्सव में सम्मिलित होने के लिए भारत से भी कई युवक व छात्र जा रहे हैं।

चित्र - कथा

एक दिन दास और वास 'टाइगर' के साथ चौक की तरफ़ गये। वहाँ एक जादूगर अपने प्रदर्शन के अन्त में जानवरों की बोलियों की नक़ल कर रहा था। दास और वास ने 'टाइगर' को एक थैले में छिपा रखा और बीच बीच में उसपर हल्के मार जमा रहे थे। जब 'टाइगर' चिल्लाने लगता तो दास और वास ने उसकी आवाज़ में अपनी आवाज़ मिलाकर लोगों को चौंका दिया। यह देख वहाँ दूसरे कुत्ते भौंकते हुए आये। 'टाइगर' डर के मारे थैले से बाहर कूदा। वहाँ इकट्ठे लोग दास और वास की धूर्तता देखकर बहुत हँसे।

Printed by B. NAGI REDDI at the B. N. K. Press (Private) Ltd., and Published by him for Chandamama Publications, from Madras 26.—Controlling Editor: SRI 'CHAKRAPANI'

हम प्रत्येक व्यक्ति और व्यापारिक संस्थाओं को आश्वासन देना चाहते हैं कि कलात्मक सृजन, स्वच्छतम कार्य-निपुणता, आकर्षणीय छपाई और शीघ्र वितरण हमारा ध्येय है।
★
हिन्दी, अंग्रेजी, तेलुगु, तमिल, कन्नड़, मराठी, गुजराती, मलयालम और उड़िया में छपाई का कार्य लिया जाता है।
★
दी बी. एन. के. प्रेस
(प्राइवेट) लिमिटेड
चन्दामामा बिल्डिंग्स :: मद्रास-२६
टेलीफ़ोन : ८८४७४

टिनोपाल की सहायता से सफेद कपड़े चमकदार सफेद बनते हैं और आपके व्यक्तित्व को उठाव देते हैं। थोड़ासा टिनोपाल बहुत समय तक चलता है और एक बार प्रयोग करने से तीन चार बार की धुलाई तक इसका प्रभाव रहता है।

टिनोपाल

“टिनोपाल” जे. आर. गायगी, एस. ए. बाल, स्विट्जरलैंड का रजिस्टर्ड ट्रेडमार्क है।

सुहृद गायगी ट्रेडिंग प्राइवेट लिमिटेड,
डाक बक्स नं. ९६५, बम्बई.

Photo by R. K. Paul

पुरस्कृत परिचयोक्ति

'चल चल यार मेरे साथ !!'

प्रेषक : श्री ओम् प्रकाश, धनबाद

CHANDAMAMA (Hindi) AUGUST 1957 Regd. No. M. 5452

रूपधर की यात्राएँ